शब्दों का जीवन

Shahdoon-ka-Jiwan

शब्दों का जीवन

शब्दों के आन्तरिक और वाह्य परिवर्तनों से सम्बन्धित भाषा-वैज्ञानिक तथ्यों का मनोरंजक अध्ययन

भोलानाथ तिवारी

Rs 2/- Page 115

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

श्रद्धेय
डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
को सादर

मूल्य दो रुपये
Rs 2/-

गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस दिल्ली से राजकमल पब्लिकेशन्स
लिमिटेड बम्बई के लिए मुद्रित

पुस्तक के विषय में

आगे के पृष्ठों में मनुष्य के जीवन में आने वाली अवस्थाओं की भाँति शब्दों के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का परिचय दिया गया है।

इस लेखन में मेरा प्रधान उद्देश्य रहा है भाषा-विज्ञान के शुष्क सिद्धान्तों के आधार पर मनोरंजक निबन्ध प्रस्तुत करना। मैं नहीं कह सकता कि अपने इस प्रयास में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है या आलोचकों की दृष्टि में निबन्ध (Essay) की कसौटी पर ये 'निबन्ध' निबन्ध हैं भी या नहीं।

आशा है यह पुस्तिका सामान्य पाठकों तथा भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। मनोरंजन के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान के 'ध्वनि', 'अर्थ' तथा 'शब्दसमूह'-सम्बन्धी सिद्धान्तों का भी परिचय इससे प्राप्त किया जा सकता है।

इन निबन्धों को लिखने में आदरणीय श्री पन्नालाल जी श्रीवास्तव तथा बन्धुवर श्री कृष्णदास जी से मैं सर्वदा प्रेरणा पाता रहा हूँ, जिसके लिए इनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

—भोलानाथ तिवारी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

सूची

१ : : शब्द जनमते हैं

संसार में सभी चीज़ें जनमती हैं। शब्द भी जनमते हैं। उनका जनमना उसी दिन प्रारम्भ हुआ जिस दिन मनुष्य ने बोलना प्रारम्भ किया। वे आज भी जन्म ले रहे हैं और भविष्य में कम-से-कम उस समय तक तो जनमते ही रहेंगे जब तक मनुष्य भाषा-कामिनी को अपने हृदय का हार बनाए रहेगा। यहाँ यह भी कहना अप्रासंगिक न होगा कि सम्भवतः इस हार से उसका पीछा छूटने का नहीं। इस प्रकार शब्दों का जनमना मनुष्य के संसार में रहने तक चलता रहेगा।

शब्दों का जन्म कैसे होता है, इस विषय में काफ़ी मतभेद रहा है। वे प्राचीन लोग, जो भाषा की उत्पत्ति के विषय में दैवी सिद्धान्त (Divine Theory) मानते हैं या जो यह मानते हैं कि भाषा को ईश्वर ने पैदा किया है[1], स्पष्टतः यह स्वीकार करते हैं कि शब्दों का

---

१. इस विषय को लेकर भी काफी विवाद है। भारतीय आर्यों के अनुसार सृष्टि का आरम्भ भारत से हुआ है और यहीं भगवान् ने सबसे पहले भाषा भी उत्पन्न की। वह प्रथम भाषा संस्कृत थी। इस संस्कृत से ही संसार की सारी भाषाएँ निकलीं। पण्डित रघुनन्दन शर्मा द्वारा लिखित 'वैदिक सम्पत्ति' में तो यह भी दिखलाने का प्रयास किया गया है कि संसार की सभी लिपियाँ देवनागरी से निकली हैं। इस प्रकार की धारणा रखने वाले संसार के सभी देशों के नामों को संस्कृत शब्दों से निकला मानते हैं। उनके लिए 'जापान' शब्द

जनक ईश्वर है, क्योंकि शब्दों का समूह ही भाषा है। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त एक अन्ध-विश्वास-मात्र है और अब इसे प्रायः सभी पढ़े-लिखे लोग स्वीकार करते हैं कि मनुष्य ने अन्य क्षेत्रों की भाँति भाषा के क्षेत्र में भी धीरे-धीरे विकास किया है और आज भी सारी जीवित भाषाएँ विकास की अवस्था में हैं। अतः 'शब्दों को भगवान् पैदा करता है', यह स्वीकार्य नहीं।

इस एक सिद्धान्त के अतिरिक्त भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्य जितने भी सिद्धान्त हैं वे शब्दों के जन्म के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। सबसे पहले अनुकरणमूलकतावाद (Bow-

---

'जयप्राण' से, 'अफ़गानिस्तान' शब्द 'आवागमन स्थान' से तथा 'जर्मनी' शब्द 'शर्मन्' आदि से निकले हैं। दूसरी ओर 'ओल्ड टेस्टामेंट' में विश्वास रखने वाले केवल 'हिब्रू भाषा' को ईश्वर द्वारा उत्पन्न की हुई मानते हैं। उनके अनुसार संसार की सभी भाषाएँ इसी से निकली हैं। इसी धारणा को लेकर १८वीं तथा १९वीं सदी में हिब्रू के बहुत से ऐसे कोष बनाये गए थे जिनमें हिब्रू शब्दों से ध्वनि तथा अर्थ में मिलते-जुलते अनेक भाषाओं से तुलनात्मक ढंग से शब्द दिये गए थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्मावलम्बी 'मागधी' को आदि-भाषा मानते हैं। जैनी लोगों का विश्वास तो सबसे आगे है। उन लोगों के अनुसार अर्द्धमागधी, जिसमें महावीर ने उपदेश दिये थे, आदि-भाषा है। उनका यह भी कहना है कि यदि बच्चों को उनके माँ-बाप कोई भाषा न सिखलाएँ तो वे अपने-आप अर्द्धमागधी बोलने लगेंगे, क्योंकि उन लोगों के अनुसार इस लोक के बाहर भी यही भाषा बोली जाती है। इतना ही नहीं उनका तो यह भी विश्वास है कि महावीर स्वामी जब उस भाषा में उपदेश देते थे तो पशु-पक्षी भी उसे समझते थे तथा उनके उपदेशों से लाभान्वित होते थे। इस प्रकार देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी के लिए वह आदि-भाषा है। मिस्र के धार्मिक लोग मिस्री भाषा के विषय में यही विचार रखते हैं। मिस्र के

Wow Theory) लीजिए। इस सिद्धान्त को मानने वालों का विचार है कि शब्दों को मनुष्य ने मनुष्येतर प्राणियों के अनुकरण पर बनाया है। यह सिद्धान्त अशुद्ध तो नहीं है, पर इस सम्बन्ध में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भाषा के सारे शब्दों को तो नहीं पर कुछ शब्दों को मनुष्य ने मनुष्येतर प्राणियों के अनुकरण पर बनाया या जन्म दिया है। कुत्ते को *'भों-भों'* करते देखकर हम कह सकते हैं कि कुत्ता 'भोंक' या 'भूँक' रहा है। 'खे खे' करने वाली 'खेखर' है। *'ति ति'* करने वाला 'तीतल' है। अंग्रेज़ी के वज़्ज़, कक्कू तथा हिन्दी के *हिनहिनाना, बिंबियाना, मिमियाना, होंकड़ना* आदि शब्द इसी प्रकार मनुष्येतर प्राणियों के अनुकरण पर आधारित हैं। इस प्रकार कुछ

एक राजा सेमेटिकस ने एक बार इस बात की परीक्षा करने के लिए जन्म के बाद ही कुछ बच्चों को अलग ऐसी जगह रखवा दिया जहाँ वे किसी भाषा के संसर्ग में न आ सकें। उनके पास सिवाय एक नौकर के, जो फ्रीजियन था, कोई नहीं जाता था। उस नौकर को भी बोलने का निषेध था। वह उन्हें रोटी देकर चला आता था। राजा तथा वहाँ के धार्मिक लोगों को विश्वास था कि वे बच्चे मिस्री भाषा बोलेंगे, परन्तु परिणाम कुछ और ही हुआ। बड़े होने पर सभी लड़के गूँगे निकले। वे केवल एक शब्द जानते थे और वह 'बेकोस' था। 'बेकोस' फ्रीजियन भाषा में रोटी का पर्याय है। नौकर ने कभी ग़लती से इस शब्द का उच्चारण उनके सामने कर दिया था, अतः वे यह शब्द सीख गए थे।

अकबर ने भी इस प्रकार का प्रयोग करवाया था। उसका प्रयोग पूर्ण सफल हुआ और फल यह हुआ कि उसके द्वारा रखे गए बच्चे बिलकुल गूँगे निकले।

इस प्रकार गर्भ से या जन्म से कोई व्यक्ति कोई भाषा सीखकर नहीं आता। यह सामाजिक सम्पत्ति है। व्यक्ति समाज में अनुकरण द्वारा इसका धीरे-धीरे अर्जन करता है।

शब्दों के जनमने का रहस्य तो मनुष्येतर प्राणियों का अनुकरण अवश्य है।

दूसरा सिद्धान्त अनुरणनमूलकतावाद (Ding Dong Theory) है। इसके अनुसार भाषा का जन्म निर्जीव पदार्थों के अनुरणन के अनुकरण पर हुआ है। यहाँ भी पिछले सिद्धान्त की भाँति आंशिक ही सत्य है। केवल कुछ थोड़े से शब्द ही इस प्रकार जनमते हैं। हिन्दी के *चटपट*, *चटचट*, *खटपट*, *भड़भड़*, *ठकठक*, *कलकल*, *झरझर* तथा इस श्रेणी के अन्य शब्दों का जन्म इसी प्रकार हुआ है। सभी भाषाओं में इस प्रकार के कुछ शब्द मिल जाते हैं। शब्दों के जनमने का यह दूसरा रास्ता है।

इसी से मिलती-जुलती एक तीसरी चीज़ भी है जिसका अलग नामकरण सम्भवतः अभी तक नहीं हो सका है। ऊपर के सिद्धान्त में शब्दों को जन्म देने में हमारे कान ने सहायता की है, पर इस श्रेणी के शब्दों के लिए आँखें सहायक होती हैं। *चमचम*, *चमाचम*, *बगबग*, *जगमग*, आदि हिन्दी शब्द इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं। इस तीसरे पथ पर बने या जनमे शब्द भाषाओं में अधिक नहीं मिलते।

भाषा के जन्म के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त मनोभावाभिव्यक्तिवाद (Pooh Pooh Theory) भी है। कुछ शब्दों के जन्म का इससे भी सम्बन्ध है। शोक, घृणा, प्रसन्नता, दुःख आदि के अवसर पर उत्तेजनाएँ स्वयं शब्द बनकर निकल आती हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में हिन्दी के '*वाह*', '*आह*', '*ओह*', '*धिक्*', '*छिः*', आदि शब्द तथा अँग्रेज़ी के '*पूह*', '*पिश*' तथा '*फाई*' आदि शब्द लिये जाते हैं। इस वर्ग के शब्दों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं है।

एक सिद्धान्त श्रम-परिहरण मूलकतावाद (Yo-he-ho Theory) का भी है। श्रम के समय श्रम के परिहरण के लिए या उसे भुलाने के लिए प्रायः लोग कुछ कहते हैं। धोबी, मल्लाह तथा सड़क आदि कूटने वाले मज़दूरों में यह बात विशेष रूप से देखी गई है। कुछ शब्द इस

प्रकार भी उत्पन्न हुए हैं, पर ऐसे शब्दों की संख्या अत्यल्प है। 'हुँ हूँ' 'हे हो' 'ए हो' 'यो हे हो' उदाहरणार्थ लिये जा सकते हैं। धोबी लोग कपड़ा धोते समय कभी-कभी तो कोई गीत गाते हैं पर कभी-कभी कुछ इसी प्रकार के शब्दों से अपना श्रम-परिहरण करते हैं। सड़क कूटने वाले मज़दूर दुर्मठ उठाते समय तथा गिराते समय ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार मल्लाह विशेषतः लंगर उठाने के लिए चक्का घुमाते समय इनका प्रयोग करते हैं।

भाषा की उत्पत्ति के विषय में धातु-सिद्धान्त (Root Theory) बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० हेज़ तथा प्रो० मैक्स-मूलर आदि ने इस सिद्धान्त को हमारे समक्ष रखा। इसके अनुसार भाषा के सारे शब्द कुछ धातुओं पर आधारित हैं। सच पूछा जाय तो इन आधुनिक विद्वानों के बहुत पहले पाणिनि ने अपने धातु-पाठ की रचना की थी, जिसमें कुल १९४३ धातुएँ हैं[1]। उनके अनुसार संस्कृत के सारे शब्द इन्हीं धातुओं पर आधारित हैं।

इस सिद्धान्त के विषय में दो-तीन बातें कही जा सकती हैं। पहली बात यह, कि यह कहना तो नितान्त भ्रामक है कि सभी भाषाओं में शब्द धातुओं पर आधारित हैं। इस दृष्टि से विश्व-भाषाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है। एक वर्ग तो उन भाषाओं का है, जिनमें शब्दों का जन्म धातुओं से होता है। अंग्रेज़ी में 'रूट' फारसी में 'मस्दर' अरबी में 'माद्दा' धातु को ही कहते हैं और इन भाषाओं में प्रायः सभी शब्द धातुओं पर ही आधारित हैं। दूसरा वर्ग उन भाषाओं का है जिनमें 'धातु' नाम का या इस प्रकार की किसी चीज़ का बिलकुल पता नहीं है। उदाहरण के लिए एकाक्षरी परिवार लिया जा सकता है जिसकी प्रधान भाषा चीनी है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि यह कहना तो बिलकुल अवैज्ञानिक है कि आरम्भ में मनुष्यों ने कुछ धातुएँ बनाईं और उनके

१. धातु-पाठ, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी।

आधार पर शब्दों का निर्माण करके भाषा का आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। (१) यदि कोई भाषा नहीं थी तो किस प्रकार लोग धातुओं के निर्माण के लिए एकत्र हुए और फिर निर्माण के समय किस पर विचार-विनिमय हुआ? (२) बिना किसी आधार के धातुएँ कैसे बनाई गईं? (३) उनके बनाने का विचार क्यों और किस प्रकार उन लोगों के मस्तिष्क में उदित हुआ? इत्यादि।

तथ्य यह है कि जिन भाषाओं में या भाषा-परिवारों में धातुएँ हैं उनका भी आरम्भिक विकास ऐसे ही हुआ। धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार शब्द विभिन्न पथों से बनते गए, और बहुत विकास के बाद जब व्याकरण (टुकड़े-टुकड़े करने का कार्य) का आरम्भ हुआ तो विद्वानों ने धातुओं का आरोप किया या उन्हें खोज निकाला। इस प्रकार धातु कृत्रिम और बाद की चीज़ है। हाँ, अब जिन भाषाओं में धातुएँ हैं उनके आधार पर आवश्यकतानुसार शब्द बनाए जा सकते हैं। इस दृष्टि से आज धातुएँ कामधेनु हो गई हैं। डॉ० रघुवीर इन्हीं के सहारे आज हिन्दी के भाण्डार को भर रहे हैं, यद्यपि इस सम्बन्ध में यह कहना युक्तिसंगत होगा कि धातुओं के आधार पर पूर्णतः नवीन लाख-दो-लाख शब्दों को किसी भाषा पर लाद देना न्याय नहीं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल अधिकाधिक शब्द जन-भाषाओं से लेने के पक्ष में हैं। यह दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ तथा श्रेयस्कर है। इसके बाद यदि और आवश्यकता हो तो शब्दों का निर्माण अवश्य किया जा सकता है।

धातुओं से शब्द प्रत्यय तथा उपसर्ग लगाकर बनते हैं। ऊपर संस्कृत की १९४३ धातुओं का उल्लेख किया जा चुका है। मैक्समूलर ने एक स्थान पर लिखा है कि संस्कृत की ये सारी धातुएँ यथार्थतः धातु नहीं हैं। वैज्ञानिक ढंग से इनका विश्लेषण किया जाय तो इनकी संख्या केवल ५०० के लगभग ही रह जायगी। हिन्दी में धातुओं की अभी तक ठीक से गणना नहीं हुई है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनु-

सार केवल मेरठ के पास या खड़ी बोली-प्रदेश में १५०० धातुएँ हैं;[१] पर हार्नली के अनुसार पूरी हिन्दी धातुओं की संख्या केवल लगभग ५०० है।[२]

एक धातु से बहुत से शब्द जनमते हैं। पेड़ से पत्ता गिरा तो 'पत्' की ध्वनि हुई, जो गिरने अर्थ की द्योतिका हुई। इस 'पत् = गिरना' से जनमे शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है। इस धातु से उद्-भूत *पतग* (पक्षी), *पतंग* (सूर्य, शलभ), *पतंजलि*, *पतत्* (पक्षी), *पतत्र* (पंख), *पतत्रि* (पक्षी), *पतत्रिन्* (पक्षी), *पतद्ग्रह* (पीकदान), *पतयालु* (पतनशील), *पतन*, *पत्र* तथा *पतित* आदि शब्द तो प्रसिद्ध हैं। अप्रसिद्ध शब्दों के साथ पूरी सूची तैयार की जाय तो संख्या २०० से ऊपर होगी। यदि इस धातु से नये शब्द बनाए जायँ तो संख्या कई हज़ार हो सकती है।

भाषा में ऐसे बहुत से देशज शब्द मिलते हैं जिनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः भाषाविज्ञानियों को अन्धकार में रहना पड़ता है। ऐसे शब्दों के जन्म के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिकों का कहना है कि चाहे देशज या और किसी प्रकार का, कोई भी शब्द हो बिना किसी आधार के उसका जन्म नहीं हो सकता। इस दृष्टि से देशज शब्दों के सम्बन्ध में मोटी बात यही कही जा सकती है कि ग्रामीण लोग किसी अन्य शब्द या ध्वनि आदि के सहारे आवश्य-कता की पूर्ति के लिए कभी-कभी नवीन शब्दों को गढ़ लेते हैं। हेमचन्द्र की 'देशीनाम माला' में इस प्रकार के बहुत से शब्द देखने योग्य हैं। आज की हिन्दी में *ठुमरी*, *ठोर*, *डाँगर*, *ढड्ढा*, *ढाढ़ी*, *ढुकना*, *उढ़-कना*, *घमंड*, *घुइँआँ घोघी*, *घेघा*, तथा *भगा*, आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

१. 'पृथिवी पुत्र', पृष्ठ ७३

२. एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के जर्नल १८८० भाग १ में 'हिन्दी रूट्स' शीर्षक लेख

इस दृष्टिकोण से अँग्रेज़ी के दो शब्द, जो सौभाग्य से हिन्दी में भी प्रचलित हैं, यहाँ विचारणीय हैं।

१. गैस

वायु का अँग्रेज़ी नाम 'गैस' है। इस शब्द का विज्ञान में विशेष प्रयोग होता है। यह शब्द बहुत पुराना नहीं है। ब्रूसेल्स के एक प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता वान हेलमांट (१५७७–१६४४) ने सर्वप्रथम इस शब्द को गढ़ा तथा इसका प्रयोग किया। पहले लोगों का विचार था कि यह शब्द उन्होंने बिना किसी सहारे के गढ़ लिया है, पर बाद की खोजों से पता चला कि ग्रीक शब्द 'Chaos' के आधार पर उन्होंने इसका निर्माण किया था।

२. कोडक

'कोडक' भी इसी प्रकार का शब्द है। यह तो गैस के भी बाद उत्पन्न हुआ है। आरम्भ में पोर्टेबल कैमरों का यह नाम था, जिनसे स्नैपशॉट लेने में सरलता पड़ती थी। बाद में किसी भी छोटे कैमरे को कोडक कहने लगे। अब तो यह एक ट्रेडमार्क है और कम्पनी का नाम है। इसकी व्युत्पत्ति अभी तक संदिग्ध है। कुछ लोगों का विचार है कि यह शब्द किसी 'डक' या 'ढक' ध्वनि पर आधारित है।

यहाँ तक शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शब्दों के जनमने पर विचार किया जा रहा था। इस सम्बन्ध में एक और दृष्टि से विचार किया जा सकता है जो अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी मनोरंजक होने के कारण यहाँ दिया जा सकता है। इस दृष्टि से शब्दों के जनमने के तो बहुत से आधार हो सकते हैं, पर प्रमुख निम्नांकित हैं।

क. नाम

कभी-कभी नामों के आधार पर शब्दों का जन्म हो जाता है। स्पष्टता के लिए इसके भी दो भेद किये जा सकते हैं। कुछ शब्द तो ऐसे मिलते हैं जो व्यक्तियों के नामों पर आधारित हैं और कुछ ऐसे

मिलते हैं जो देश आदि के नामों पर आधारित हैं।

१. व्यक्ति

व्यक्तियों के नामों पर आधारित शब्दों में पहला शब्द '*बॉयकाट*' लिया जा सकता है।

बॉयकाट

हिन्दी में यह शब्द अंग्रेज़ी से आया है। इसका अर्थ बहिष्कार होता है। गांधी द्वारा चलाये गए राष्ट्रीय आन्दोलन और शान्त युद्ध, जिसमें और बहुत अन्य बातों के साथ विदेशी वस्तुओं एवं संस्थाओं का बॉयकाट (बहिष्कार) किया जाता था, के समय यह शब्द हिन्दी ही नहीं अपितु भारत की सभी भाषाओं में घुस आया। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि और अंग्रेज़ी चीज़ों के साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी 'बॉयकाट' किया गया था, फिर भी, उसी 'बॉयकाटेड अंग्रेज़ी' का शब्द होते हुए भी यह चला आया और घर कर गया। वह आन्दोलन ही बॉयकाट-आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध है। किसी शब्द की शक्ति का यहाँ पता चलता है।

'*बॉयकाट*' शब्द बहुत पुराना नहीं है। आयरलैंड के काउंटी मेयो में किसी ज़मींदार के यहाँ एक कैप्टेन बॉयकाट नाम का कारिन्दा था। यह बड़ा क्रूर था और प्रजा को बहुत परेशान करता था। प्रजावर्ग ने आजिज़ आकर सन् १८८० के दिसम्बर महीने में आपस में तय करके इसके सारे काम छोड़ दिए—नाई ने हजामत बनानी छोड़ दी, धोबी ने कपड़े धोना, रसोइए ने रसोई बनाना इत्यादि। फल यह हुआ कि शीघ्र ही उसे झुकना पड़ा। उसके बाद ही इस प्रकार के बहिष्कार के लिए उसका नाम क्रिया तथा संज्ञा रूप में प्रयुक्त होने लगा। यूरोप की जर्मन तथा फ्रांसीसी आदि भाषाओं में भी यह फैल गया है। भारत के भी प्रायः सभी समृद्ध भाषाओं के कोषों में यह स्थान पा गया है।

कुछ और मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

सावित्री

सावित्री हमारी पौराणिक महिला हैं जिन्होंने अपने पातिव्रत धर्म के बल से अपने मृत पति सत्यवान को पुनर्जीवित किया था। अब इनका नाम 'अहिवाती' या 'सौभाग्यवती' के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। प्रयोग चलता है—*सावित्री* स्त्रियों को बिना सिंदूर के न रहना चाहिए।

एटलस

'*एटलस*' शब्द हिन्दी का न होते हुए भी अब हिन्दी का अपना हो गया है। नकशों की पुस्तक को '*एटलस*' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति की कथा बड़ी विचित्र है। 'एटलस' एक दैत्य था, जिसका नाम यूनानी धर्म-कथाओं (mythology) में मिलता है। होमर में भी यह नाम आया है। यह उन खम्भों का रक्षक था जिन पर स्वर्ग टिका है। अन्य मत से यह विश्व को अपने कन्धों पर लिये था। यह भी कहा जाता है कि भगवान् के विरुद्ध कभी यह लड़ाई करने को तैयार हुआ और फलस्वरूप इसे पहाड़ हो जाने का शाप मिला। अफ्रीका में आज भी 'एटलस' नाम का पर्वत है और लोगों का विश्वास है कि स्वर्ग उसी पर टिका है।

नकशे की पुस्तक के लिए इसके नाम के प्रयोग में प्रसिद्ध भूगोल-वेत्ता जान मरकेटर (१५१२-१५९६) का हाथ है। उसने अपने नकशों की पुस्तक में आरम्भ में (फ्रांटिसपीस) एक चित्र दिया था जिसमें एक दैत्य अपने कन्धों पर विश्व को लिये था। उसके नीचे 'एटलस' शब्द छपा था। उसी को लेकर नकशों की पुस्तकों के लिए यह शब्द प्रचलित हो गया और अब इसका अधिक विश्रुत अर्थ 'नकशों की पुस्तक' ही है।

मर्सराइज्ड

'*मर्सराइज़्ड*' शब्द भी नया ही है। हिन्दी में द्वितीय महायुद्ध में कपड़ों की महँगी में इस शब्द का प्रचलन हुआ है और अब तो यह

देहातों में रहने वाले अशिक्षितों में भी 'कोर्स', 'फ़ाइन' और 'सुपरफ़ाइन' के साथ फैल गया है।

मर्सर (Mercer) नाम का एक जुलाहा था। यह १७९१ में पैदा हुआ था तथा १८६६ में मरा। 'वेब्स्टर'[1] में इसे फ्रेंच माना गया है, यद्यपि यह अंग्रेज़ था। १८४४ में इसने एक ऐसा मसाला तैयार किया जिसमें डुबोने से सूती कपड़ों में स्थायी चमक आ जाती थी और जो धुलाने पर भी खराब नहीं होती थी। इसी जुलाहे के नाम पर इस मसाले में डुबोने की क्रिया को 'मर्सराइज़' कहने लगे और इस मसाले में डुबाए कपड़े *'मर्सराइज़्ड'* कहे जाने लगे। अब हिन्दी में भी इस मसाले में डुबाए कपड़ों को *'मर्सराइज़'* ही कहने लगे हैं।

अलाय-बलाय

यह एक हिन्दी शब्द है जिसका अर्थ 'बेकार' या 'जवाल' होता है। प्रयोग चलता है—ऐसे अलाय-बलाय को मेरे पास न भेजो। इसमें यों तो 'बलाय' शब्द अरबी शब्द 'बला' से जनमा लगता है और अलाय उसी का युग्मक या छाया-रूप ज्ञात होता है, पर यथार्थतः बात यह नहीं है। इस नाम का कोई दैत्य था या दैत्य-बन्धु थे। कुछ परिवर्तन के साथ ये शब्द अथर्ववेद के मन्त्रों में आए हैं। आज के मन्त्र-साहित्य में भी ये मिलते हैं :

अलाइन बलाइन।
सिसोइया पर के डाइन।
नोना चमाइन। इत्यादि

यहाँ 'इन' लगाकर उन्हें स्त्री बनाकर डाइन कहा गया है। नाथ-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नाथ गोरखनाथ में भी ये शब्द कुछ परिवर्तन से 'प्रपंची' अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं :

न्यंद्रा कहै मैं अलिया-बलिया, ब्रह्मा विष्न महादेव छलिया।

---

१. Webster's New International Dictionary. London. 1927.

ऐसा लगता है कि किसी प्राचीन आर्य लोक-कथा के ये पात्र थे। बाद में भूत या दैत्य रूप में इनकी स्तुति होने लगी फिर ये 'प्रपंची' आदि होने से इसी अर्थ में प्रयुक्त होने लगे और आज वह अर्थ विकसित होकर बेकार व्यर्थ (प्रपंची से मिलता-जुलता) हो गया है। दूसरी ओर मन्त्रों में इसकी पुरानी परम्परा सुरक्षित है।

इको (Echo)

अंग्रेज़ी का एक शब्द 'इको' है। इसका अर्थ प्रतिध्वनि होता है। यूनानी धर्म-कथा में 'इको' एक देवी हैं जो बहुत बातूनी थीं। 'जूना' नाम की एक दूसरी देवी ने रुष्ट होकर इसे यह शाप दिया कि तुम्हें यों सर्वदा चुप रहना पड़ेगा पर यदि कोई दूसरा बोलेगा तो उसके बाद उसकी प्रतिध्वनि बनकर तुम्हें अवश्य बोलना पड़ेगा। तब से यह देवी प्रतिध्वनि बनकर बोलती है। इसी कारण इसका नाम प्रतिध्वनि अर्थ में क्रिया एवं संज्ञा रूप में प्रयुक्त होने लगा है। एक अन्य मत से 'इको' एक जलपरी थी जो वायु और पृथ्वी की पुत्री थी। वह अपने प्रेमी नर्सिसस के प्रेम में तड़पकर चिल्लाती रही। चिल्लाते-चिल्लाते ऐसी अवस्था आई कि उसका शरीर समाप्त हो गया और वह ध्वनि-मात्र रह गई। वही ध्वनि-मात्र प्रतिध्वनि रूप में आज भी विश्व में विद्यमान है।

सैंडो

हिन्दी में *सैंडो* उस बनियान या गंजी को कहते हैं जिसमें बाँह या आस्तीन नहीं होती। यह शब्द मूलतः एक पहलवान का नाम था जिसने सर्वप्रथम इस प्रकार के बनियान का प्रयोग किया। बाद में उसी का नाम इस विशेष प्रकार के बनियान के लिए चल पड़ा। आज सैंडो तो मर गया पर उसका नाम इस रूप में अमर है।

क्विसलिंग (Quisling), विभीषण तथा जयचन्द

ये भी तीनों शब्द नाम हैं पर अब सामान्य व्यक्तिवाचक शब्द या विशेषण हो गए हैं। नारवे की सेना में '*क्विसलिंग*' नामक एक अफ-

सर था। गत-युद्ध में वह अपने विपक्षियों से मिल गया। अब अंग्रेज़ी में यह शब्द देशद्रोही के अर्थ में प्रयुक्त होता है। *विभीषण* और जय-चन्द से तो हम परिचित ही हैं। ये दोनों शब्द भी देशद्रोही के वाचक हो गए हैं। मुझे याद आता है, सन् १६३६ में गाजीपुर में भाषण देते समय स्वर्गीय पंडित परमानन्द (भाई परमानन्द नहीं) ने सी० आई० डी० के लोगों को लक्ष्य करते हुए एक सभा में कहा था—'ऐ जयचन्दो और विभीषणो! कुछ शरम खाओ। यह देश केवल हमारा ही नहीं है, तुम्हारा भी है।....'

अंग्रेज़ी में इस प्रकार के बहुत अधिक शब्द हैं। कुछ प्रसिद्ध शब्द ऊपर देखे जा चुके हैं। अन्य शब्दों में अनाज के अर्थ में '*सिरियल*' (यूनान की कृषि की अधिष्ठात्री देवी डेमेटर के रोमन नाम 'सेरेस' से यह शब्द जनमा है), प्रसन्नचित्त के अर्थ में '*जोवियल*' (रोमनों के विष्णु 'जोव' के आधार पर) तथा प्रेमपूर्ण या वासनात्मक अर्थ में '*इरोटिक*' (यूनानियों के कामदेव इरोटिकस के आधार पर) आदि शब्द देखे जा सकते हैं। हिन्दी में इस प्रकार के शब्द बहुत कम हैं, और जो हैं भी वे अंग्रेज़ी की भाँति धड़ल्ले से प्रयुक्त नहीं होते। कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। कुछ और देखे जा सकते हैं—

१. वह तकदीर का *सिकन्दर* है।

२. तुम भी भला उस *मजनूँ* का विश्वास करते हो!

३. उसका *हिटलरी* हुक्म कौन टाल सकता है।

४. सन् '४२ में सरकार की *नादिरशाही* लूट दर्शकों का कलेजा कँपा देती थी।

यहाँ सिकन्दर का अर्थ बड़ा, मजनूँ का पागल, हिटलरी का जो टालने योग्य न हो तथा नादिरशाही का क्रूर और दर्दनाक है। इसी प्रकार *हरिश्चन्द्र*, *युधिष्ठिर* तथा *गाँधी* 'सच्चे' के पर्याय हैं।

२. स्थान तथा देश

अब तक हम लोग व्यक्तियों के नामों से जनमने वाले शब्दों पर

विचार कर रहे थे। यहाँ स्थान या देश के नाम से उत्पन्न हुए शब्द देखे जा सकते हैं।

एकेडेमी

'*एकेडेमी*' यूरोपीय शब्द है पर अब भारत में भी इसका प्रचार है। ऐसी संस्था के लिए इसका प्रयोग होता है जहाँ कला और संस्कृति आदि के गम्भीर अध्ययन या अध्यापन का कार्य होता हो। उर्दू एकेडेमी, म्युज़िक एकेडेमी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी नाम हम लोगों से अपरिचित नहीं हैं।

'एकेडेमी' मूलतः एक बगीची का नाम था। यह बगीची एथेंस के पास थी। प्लेटो और उसके विद्यार्थी यहाँ बैठकर अपने दार्शनिक वादविवाद करते थे। उसी स्थान का 'एकेडेमी' नाम आज '*एकेडेमी*' शब्द हो गया है।

सुर्ती

खाने के तम्बाकू को तम्बाकू, खइनी, ज़र्दा या *सुर्ती* कहते हैं। यह *सुर्ती* नाम 'सूरत' नाम के नगर से निकला है। सुर्ती का प्रचार पुर्तगालियों ने यहाँ किया। वे जब यहाँ आये तो सूरत नगर में ही विशेष अड्डा बनाया और वहीं से सुर्ती का प्रचार हुआ अतः उसके नाम पर *सुर्ती* अर्थात् 'सूरत की' इसका नाम पड़ा।

चीनी

'*चीनी*' दो प्रकार की होती है। एक पक्की, जिसे '*चीनी*' कहते हैं और दूसरी कच्ची, जिसे '*शक्कर*' या '*सक्कर*' कहते हैं। '*शक्कर*' या '*सक्कर*' तो भारतीय वस्तु है। इसका संस्कृत नाम '*शर्करा*' है, पर पक्की चीनी सर्वप्रथम यहाँ चीन से आई, अतः उसे चीनी कहा गया।

मोरस

पक्की चीनी, जो मिलों में बनती है, कुछ हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में 'मोरस' के नाम से पुकारी जाती है। बहुत दिन तक यह शब्द

मेरी समझ में न आ सका, पर एक दिन एकाएक यह पढ़ते समय कि मिल की सफेद दानेदार चीनी पहले यहाँ मॉरिशस से आती थी, यह अनुमान लगा कि 'मोरस' शब्द 'मॉरिशस' से ही निःसृत है।

मिश्री

'*मिश्री*' चीनी को साफ करके बनाई जाती है। शब्द पर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि '*मिश्री*' में कई चीजों के मिश्रण से यह नाम बना है। पर, यथार्थ बात यह है कि मुगल-काल में पहले-पहले '*मिश्री*' मिस्र देश से आई और वहीं के लोगों से भारतीयों ने इसको बनाना सीखा। इसी कारण उसे *मिस्री* कहा गया। बाद में यह 'मिस्री' शब्द मिश्री हो गया।

सेंधा

सेंधा नमक के नाम से हम अपरिचित नहीं हैं। काला, कटलिया, समुद्री, साँभर तथा सुलेमानी की भाँति यह भी एक प्रकार का नमक होता है जिसे लोग—प्रधानतः धार्मिक लोग—अधिक पसन्द करते हैं। *सेंधा* शब्द संस्कृत शब्द *सैंधव* (नमक) का विकसित रूप है। आर्य जब भारत में आए तो सिन्धु (सिन्धु प्रदेश) में घोड़े और नमक विशेष रूप से होते थे। 'सिन्धु' के नाम पर ही इन दोनों (घोड़ा और नमक) को लोगों ने सैंधव (=सिन्धु देश में होने वाला) कहा। इस प्रकार 'सेंधा' शब्द भी देश के नाम पर आधारित है।

डॉ० मोतीचन्द द्वारा लिखित 'प्राचीन भारतीय वेश-भूषा' में बहुत से वस्त्रों के नाम मिलते हैं जो मूलतः जिस स्थान पर बनते थे वहाँ के नाम पर आधारित हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ऐसे वस्त्रों के नाम हैं। उदाहरणतः कुछ नाम देखे जा सकते हैं—

वस्त्र के नाम	वस्त्र बेनने के स्थान का नाम
माधुर	मधुरा (आधुनिक मदुरा)
अपारांतक	आपरांत (आधुनिक कोंकण)

काशि	काशी जनपद
वांगक	वंगदेश (बंगाल)
वात्सक	वत्स देश (प्रयाग के आस-पास)

साहित्य में भी देशों के नाम पर आधारित पारिभाषिक शब्द मिलते हैं।

लाटानुप्रास

यह एक अनुप्रास होता है जिसमें शब्द एक ही रहते हैं पर अन्वय-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है।

पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि।
पीय निकट जाके, नहीं घाम चाँदनी ताहि॥

इसका नाम लाट देश (आधुनिक भड़ौंच के पास) के नाम पर आधारित है। सम्भवतः इस अनुप्रास का जन्म वहीं के किसी साहित्यिक द्वारा हुआ था।

रीति

संस्कृत-काव्य-शास्त्र में रीतियाँ तीन मानी गई हैं। ये तीनों ही देशों के नाम पर आधारित हैं। सम्भवतः इनका उद्भव और विकास जिन देशों के साहित्यिकों ने किया उन्हीं के नाम पर इनका नामकरण किया गया। इनके नाम हैं—१. *गौड़ी* (गौड़ देश, जो आजकल बंगाल का एक भाग है), २. *पांचाली* (पांचाल देश), तथा ३. *वैदर्भी* (विदर्भ या बरार)।

ख. विश्वास

कुछ नाम लोगों के विश्वासों तथा लोक या कवि-प्रसिद्धियों पर आधारित मिलते हैं। लोगों का विश्वास है कि कौवे के दो अक्षगोलक तथा एक आँख होती है। वही एक आँख बारी-बारी से दोनों गोलकों में जाती है। इस विश्वास के कारण संस्कृत-साहित्य में कौवे का एक नाम 'एकाक्ष' मिलता है। इसी प्रकार लोगों का विश्वास है कि चन्द्रमा

के बीच में काला धब्बा मृग या हरिण है। इसी आधार पर चन्द्रमा के *मृगांक, हरिणांक* आदि पर्यायों ने जन्म लिया है।

यह कवि-प्रसिद्धि रही है कि नायिका जब अपने अशोक को मारती है तो वह फूल उठता है। इसी आधार पर अशोक को *वामांघ्रिघातन* कहा गया है। चातक के विषय में कहा जाता है कि यह नदी या तालाब आदि का पानी नहीं पीता, केवल बादल का बरसता पानी पीता है, इसी कारण इसे *मेघजीवन* कहा गया है। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि वह केवल स्वाति नक्षत्र का जल पीता है। इस आधार पर उसका नाम *स्वातिजीवन* मिलता है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि स्वाति-बूँद जब केले के पेड़ में पड़ता है तो कपूर हो जाता है। इसी आधार पर कपूर को *मेघसार* भी कहा गया है। *घनसार* शब्द भी उसी का पर्याय है।

ग. रूप

रूप के आधार पर नामकरण तो बहुत ही युक्तियुक्त है। आँख के अन्धे नाम नयनसुख कोई नहीं पसन्द करता। हाथी और दूसरे पशुओं की तुलना में एक यह विशेषता है कि उसके पास हाथ या सूँड है। इसी कारण उसे '*करी*' '*हस्ती*' या '*हाथी*' कहा गया है। उसके दो दाँत भी और पशुओं से विचित्र हैं, अतः उसे *द्विरद* (दो दाँत वाला) कहा गया है। सिर तथा मुँह के आस-पास अधिक बाल होने से सिंह को *केशरी* कहते हैं। इस प्रकार जनमे शब्द सभी भाषाओं में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

घ. गुण या कार्य

गुण के अनुसार नाम होना तो और भी उत्तम है। भैंसे और घोड़े में सहजात शत्रुता होती है। इसी कारण भैंसे को *घोटकारि* कहते हैं। घास पैर में चुभती है, अतः उसे तृण (तृद् = चुभना) कहते हैं। सफेद होने के कारण कपूर को *सिताभ* कहते हैं। सूर्य प्रकाश देता है अत

उसे *प्रभाकर* तथा *विभाकर* आदि कहते हैं। दिन करने से वह *दिनकर* कहलाता है। डरावनी आवाज करने से गीदड़ को *घोरासन* कहते हैं। ढेकुवार का पत्ता मलने से उसमें से घी निकलता है अतः उसे *घृतकुमारी* कहते हैं। रोग (गद) को हरने वाला (हा) होने के कारण वैद्य को *गदहा* कहते हैं। आसमान में चलने या गमन करने के कारण पक्षी का नाम *खग* है। चन्द्रमा, सूर्य तथा तारे आदि भी इसी कारण '*खग*' कहे जाते हैं। समुद्र में रत्न हैं, अतः वह *रत्नाकर* है। धन या रत्नों को धारण करने के कारण पृथ्वी *वसुन्धरा* है।

ङ. कल्पना

बहुत से शब्द ऐसे मिलते हैं जिनके मूल में काव्य-सुलभ कल्पनाएँ या तत्सम्बन्धी अलंकार रहते हैं। *आबेरवाँ* एक कपड़े का नाम है। नाम रखने वाला कितना कल्पना-प्रवण था कि उस कपड़े को आब या पानी की रवानी वाला कहा। स्त्रियों के अधिकांश आभूषणों के नाम इसी प्रकार के हैं। *कर्णफूल*, *चन्द्रहार*, *चम्पाकली*, *पाजेब* आदि सभी में कल्पनापूर्ण काव्य-सौन्दर्य है। आज के नामों में *किसुन भोग* (कृष्णभोग), *मोहनभोग* (बढ़िया हलवा) तथा मिठाइयों के नामों में इमरती (अमृती),*रसगुल्ला* (रस + गुल),*लवंगलता* भी इसी प्रकार के नाम हैं। वीर बहूटी को *इन्द्रवधू*, पूर्णेन्दु को *राकेश*, लाल फूल वाली एक लता को *इश्कपेचा*, चन्द्रमा को *निशाकान्त*, सूर्य को *मरीचिमाली* तथा गुल दुपहरिया को *सूर्यभक्त* कहना भी कल्पना की एक सीमा है।

इसी वर्ग के नामों में कभी-कभी अतिशयोक्तिपूर्ण शब्द भी मिलते हैं। तिल के फूल का एक नाम है *सूर्यकांति*। एक और फूल का नाम है *सूर्यशोभा*। एक विशेष भटकटैया का नाम *चन्द्रपुष्पी* है। *चन्द्रप्रभा* कपूर की संज्ञा है; इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द जनमते हैं और उनका जनमना बड़ा ही मनोरंजक है।

२ : : शब्द बढ़ते हैं

बच्चे पैदा होते हैं और उसके बाद ही उनका बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। उनकी वृद्धि—विशेषतः उनकी लम्बाई में वृद्धि, जिसे यहाँ हम 'बढ़ना' कहेंगे—प्रायः २५-३० वर्ष की आयु तक चलती रहती है। बात प्रायः सभी मनुष्यों के विषय में सत्य है, पर जहाँ तक शब्दों के बढ़ने का सम्बन्ध है उनकी आत्मा या उनके अर्थ में तो वृद्धि प्रायः होती है—जिस पर आगे 'शब्द मोटे होते हैं' शीर्षक में विचार किया गया है—पर उनकी लम्बाई में वृद्धि बहुत कम देखी जाती है। फिर भी इसके उदाहरणों का शब्द-संसार में बिलकुल अभाव नहीं है।

भोजपुरी का एक शब्द '*मेहरारू*' है, जिसका अर्थ स्त्री होता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लोगों के दो मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार तो इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'महिला' से है। यदि '*महिला*' को ही ठीक मानें तो भी कहना होगा कि '*महिला*' शब्द '*मेहरारू*' बनकर लम्बाई में बढ़ गया है। कुछ अन्य लोगों के अनुसार इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द '*मेहना*' (=स्त्री) से है। यही मेहना शब्द '*मेहरा*' बनकर आज हिन्दी में 'जनखा' के अर्थ में प्रचलित है और यह '*मेहरा*' ही '*मेहरारू*' हो गया है। यहाँ भी '*मेहना*' के '*मेहरारू*' बनने में स्पष्ट ही उसकी लम्बाई बढ़ गई है।

शब्दों के बढ़ने का प्रधान कारण उनमें किसी बाहरी ध्वनि—स्वर, व्यंजन या अक्षर (syllable)—का 'आगम' या 'आना' है। शास्त्रीय

दृष्टि से 'आगम' के कई भेद-विभेद होते हैं। कभी तो 'आगम' शब्दों के आरम्भ में होता है, कभी बीच में और कभी अन्त में। इस दृष्टि से 'आदि-आगम', 'मध्य-आगम' तथा 'अन्त-आगम' ये तीन भेद होते हैं। इसके अतिरिक्त आगे स्वर, व्यंजन तथा अक्षर के आधार पर तीनों में प्रत्येक के तीन-तीन विभेद भी होते हैं और इस प्रकार कुल नौ हुए। यहाँ अत्यन्त संक्षेप में इनको देखा जा सकता है।

१. आदि स्वरागम—इसमें शब्द के आरम्भ में कोई स्वर आने के कारण शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है। जैसे *स्तुति* से *अस्तुति* तथा '*स्कूल*' से '*इस्कूल*' आदि। आदि स्वरागम को अँग्रेज़ी में Prothesis कहते हैं। हिन्दी में कुछ लोग इसे 'पुरोहिति' भी कहते हैं।

२. मध्य स्वरागम—इसका अँग्रेज़ी नाम anaptyxis है। इसमें शब्द के मध्य में किसी स्वर के आ जाने से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है। जैसे '*गर्म*' से '*गरम*' या '*ग्रहण*' से '*गरहन*' या 'गिरहन' आदि। ग्रामीण बोलियों में इस प्रकार के उदाहरण अधिक मिलते हैं। इस पुस्तक में आगे इसके कुछ मनोरंजक उदाहरण दिये जायंगे।

३. अन्त स्वरागम—इसमें शब्दांत में किसी स्वर के आगम से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है। '*दवा*' से '*दवाई*', '*पत्र*' से '*पतई*' तथा '*स्वप्न*' से '*सपना*' इसके उदाहरणस्वरूप देखे जा सकते हैं।

४. आदि व्यंजनागम—इसमें शब्द के आदि में किसी व्यंजन के आ जाने से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है, जैसे '*ओठ*' से '*होठ*'।

५. मध्य व्यंजनागम—इसमें शब्द के मध्य में किसी व्यंजन के आ जाने से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है, जैसे '*लाश*' से '*लहास*'।

६. अन्त व्यंजनागम—इसमें शब्द के अन्त में किसी व्यंजन के आ जाने से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है, जैसे '*भौं*' से '*भौंह*' या '*रंग*' से '*रंगत*'।

७. आदि अक्षरागम—इसमें शब्द के आरम्भ में कोई अक्षर (syllable) आ जाता है, जैसे *गुञ्जा* से *घुँगुची*।

८. मध्य अक्षरागम—इसमें शब्द के मध्य में किसी अक्षर के आ जाने से शब्द की लम्बाई बढ़ जाती है, जैसे 'शबेकद्र' से 'शबुलकद्र' या शबेतुलकद्र आदि।

९. अन्त अक्षरागम—इसमें शब्दान्त में किसी अक्षर के आ जाने से शब्द बड़ा हो जाता है, जैसे 'अंक' से 'आँकड़ा'।

शब्दों के बढ़ने के कुछ और मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं। लाह या पालिश से चिकने किये मिट्टी के चौड़े मुँह के बरतन को जिसमें प्रायः 'अचार' या 'मुरब्बा' रखते हैं, '*अमरित बान*' या '*मिरित बान*' कहते हैं। मूलतः यह शब्द मृत् (= मिट्टी) और भांड (= बरतन) के योग से बना है। कहना न होगा कि इसकी भी लम्बाई बढ़ गई है।[1]

फ़ारसी में घुड़सवार या किसी भी वाहन पर चढ़े व्यक्ति को '*सवार*' कहते हैं। (यों लोग सिर पर भी 'सवार' हो जाते हैं, पर जाने क्यों उन्हें सवार कहने की परम्परा नहीं है।) यह '*सवार*' शब्द हिन्दी की बोलियों में '*असवार*' होकर लम्बा हो गया है। मध्य युग में तो यह बढ़ा हुआ शब्द साहित्य में भी प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी के मुकुट ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में लिखा है:—

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा।
होइअ नाथ अस्व *असवारा*॥

इसी प्रकार '*सवारी*' का '*असवारी*' हो गया है।

संस्कृत में '*गाय*' के लिए '*गो*' शब्द है। '*गो*' ही बढ़कर '*गाय*' हो गया है। इस प्रकार की कुछ वृद्धियाँ तो स्वयं संस्कृत में भी हैं। 'नर' का अर्थ आदमी है और उसमें 'सु' उपसर्ग लगाने से 'सुनर' बनता है, जिसका अर्थ अच्छा आदमी होगा। यह 'सुनर' शब्द ही 'द' के घुस आने से 'सुन्दर'

---

१. 'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार तो इसकी व्युत्पत्ति यही है, पर स्टेंगस ने अपने फ़ारसी कोष में 'मर्तबान' को शुद्ध अरबी शब्द माना है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी यह शब्द शब्दों के बड़े होने का अच्छा उदाहरण है।

हो गया है। इसी प्रकार सु + नरी = सुनरी 'द' के घुस आने से '*सुन्दरी*' हो गया है। 'द' के घुसने ने यहाँ भी शब्द की लम्बाई कुछ बढ़ा दी है।

'द' वर्ण शब्दों में घुसने का बड़ा आदी है। संस्कृत में शब्द था '*वानर*' (नर या आदमी से मिलता-जुलता या वन की चीज़ों से प्रेम रखने वाला) और वही हिन्दी में '*बन्दर*' हो गया। यहाँ भी 'द' की करामात है। फ़ारसी शब्द '*तनूर*' भी इसी के फेर में पड़कर उर्दू-हिन्दी में '*तन्दूर*' बन गया है।

बहुत से लोग '*शाप*' के स्थान पर अधिक शुद्ध संस्कृत शब्द जानकर '*श्राप*' का प्रयोग करते हैं, पर तथ्य यह है कि '*शाप*' ही शब्द शुद्ध संस्कृत है और इसका विकृत रूप '*श्राप*' 'र' वर्ण के घुस आने से बना है। आजकल तो यह '*श्राप*' और बढ़कर '*सराप*' हो गया है और '*सरापना*' क्रिया के रूप में साहित्य में भी प्रयुक्त हो रहा है।

संस्कृत का एक शब्द '*प्रबल*' है। यह हिन्दी में बढ़कर 'परबल' ही नहीं अपितु '*अपरबल*' हो गया है। कबीर कहते हैं :

पानी माँही पर जली रुई अपरबल आगि।
बहती सरिता रह गई मच्छ रहे जल त्यागि॥

संस्कृत का '*पत्र*' शब्द बिगड़कर '*पत्तर*' बना। इस '*पत्तर*' से कई शब्द बने जिनमें मुख्य '*पतला*' (जो मोटा या गाढ़ा न हो) तथा 'पत्तल' (पत्तों का थाल) हैं। कहना न होगा कि '*पत्र*' की तुलना में '*पतला*' और '*पत्तल*' दोनों बढ़े हुए हैं।

संस्कृत और अँग्रेज़ी के बहुत से शब्दों को हम लोगों ने अज्ञानता-वश या बोलने की सुविधा के लिए बढ़ा लिया है। '*स्टेशन*' से '*इस्टेशन*', '*स्कूल*' से '*इस्कूल*', '*स्नान*' से '*अस्नान*', '*स्तुति*' से '*अस्तुति*' तथा '*स्तोत्र*' से '*इस्तोत्र*' आदि।[1] यहां एक विचित्र बात

---

१. लिखते समय इन शब्दों को भले ही हम इस तरह न लिखने की बेई-मानी करते हों पर बोलने में तो कुछ दो-चार को छोड़कर सभी इसी प्रकार बोलते हैं।

यह है कि इस प्रकार की वृद्धि केवल उन शब्दों में हुई है जिनके आदि में आधा 'स' पहले से उपस्थित है।

मुसलमान लोग प्रायः बोलते समय संस्कृत शब्दों में प्रयुक्त आधे 'र' को पूरा करके प्रयुक्त करते हैं। '*डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद*' यदि उन्हें कहना होगा तो वे '*डाक्टर राजेन्दर परसाद*' कहेंगे। हमारा '*प्रार्थना*' शब्द उनके लिए '*परारथना*' है। इस प्रकार भी शब्दों की लम्बाई बढ़ जाती है। यहाँ एक अवान्तर विषय की ओर भी ध्यान दिलाया जा सकता है। एक तालीमयाफ़्ता मुसलमान, जिसका उर्दू मुहावरे के अनुसार 'शीन-क़ाफ़' दुरुस्त है, शुद्ध हिन्दी बोलते समय आधे अक्षरों को प्रायः पूरा करके (दूसरे शब्दों में बिगाड़कर) बोलता है जैसे '*शास्त्र*' से '*शास्तर*' तथा '*प्रयाग*' से '*परयाग*' आदि। पर वही मुसलमान अँग्रेज़ी बोलते समय *पराइड* (Pride) न कहकर '*प्राइड*' या *गरेड* (Grade) न कहकर '*ग्रेड*' कहता है। कोई भी बात अकारण या बेमानी नहीं होती। क्या उसके मूल पर कभी हमने विचार किया है? ख़ैर।

पंजाबियों में भी इस प्रकार की एक विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है, पर उनकी प्रवृत्ति किसी ख़ास भाषा तक सीमित न रहकर सामान्य प्रवृत्ति है। ऊपर हम लोग आधा 'स' से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के आरम्भ में 'अ' या 'इ' स्वर के आने का उल्लेख कर चुके हैं। जैसे *स्टेशन* से *इस्टेशन* या *स्कूल* से *इस्कूल* आदि। पंजाबी लोग इस प्रकार 'इ' या 'अ' न बढ़ाकर 'स' को ही पूरा कर लेते हैं। उदाहरणार्थ वे लोग '*स्टेशन*' को '*सटेशन*', '*स्कूल*' को '*सकूल*' तथा '*स्प्रिंग*' को '*सप्रिंग*' आदि कहते हैं। उत्तर प्रदेश के पंजाबियों में तो इस बात की ओर अभी अधिक खोजबीन नहीं की गई, पर मथुरा की ओर तो हाई-स्कूल पास लोगों के मुँह से भी आम तौर से ऐसा सुना जाता है। इस प्रकार भी शब्दों की लम्बाई बढ़ जाती है।

ऊपर मुसलमानों के संस्कृत शब्दों के आधे अक्षरों को पूरा बनाकर

कहने की बात आ चुकी है। अपनी ग्राम-बोलियों में भी यह प्रवृत्ति ख़ूब है—'*कृपा*' से '*किरिपा*', '*क्रिया*' से '*किरिया*', '*वेश्या*' से '*बेसवा*' तथा '*समुद्र*' से '*समुन्दर*' आदि। यहाँ भी शब्दों को बढ़ जाना पड़ता है।

'*आलसी*' को कहीं-कहीं '*आलकसी*' कहते हैं। यहाँ 'क' वर्ण घुस आया है। फ़ारसी का '*अलाची*' शब्द हमारे यहाँ '*इलायची*' (सं० एला, एलिका) हो गया है। यहाँ भी एक वर्ण 'य' घुस आया है। '*क़ल*' से '*क़ल्ह*', '*जेल*' से '*जेहल*' तथा '*लाश*' से '*लहास*' में 'ह' शब्द ने घुसकर इनको बड़ा कर दिया है। '*टालटूल*' 'म' के घुसने से इसी प्रकार '*टालमटोल*' हो जाता है।

'*अख़रोट*' को लोग प्रायः फ़ारसी समझते हैं। इसका कारण शायद यह है कि 'ख़' के नीचे बिंदु है। पर यथार्थतः यह शब्द संस्कृत शब्द '*अक्षोट*' है (सम्भव है इसका 'मुफ़र्रस' भी हो), जो विकसित होकर '*अख़रोट*' हो गया है। यहाँ भी '*अक्षोट*' से '*अख़रोट*' बड़ा हो गया है।

'*फ़ज़ूल*' शब्द देहात में '*बेफ़ज़ूल*' कहा जाता है। यों 'बेफज़ूल' का अर्थ है जो '*फ़ज़ूल*' न हो, पर प्रयोग में '*बेफ़ज़ूल*' भी फज़ूल का ही अर्थ रखता है। इस प्रकार यह शब्द भी लम्बाई में बढ़ गया है।

'*व्यर्थ*' शब्द अवधी में बढ़कर '*अँबिरिथा*' हो गया है। जायसी लिखते हैं :

पेम क आगि जरइ जउ कोई। ताकर दुख न *अँबिरिथा* होई॥

'*अमीर*' एक अरबी शब्द है, जिसका बहुवचन '*उमरा*' होता है। हिन्दी में '*उमरा*' बढ़कर '*उमराव*' हो गया है। सूरदास ने लिखा है :

महा महा जो सुभट दैत्य बल बैठे सब *उमराव*।
तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सम्मुख को आव॥

इसी प्रकार संस्कृत का '*कृष्ण*' शब्द बोलियों में '*किरिसुन*' हो गया है। कहीं-कहीं तो मध्ययुगीन साहित्य में भी यह प्रयुक्त हुआ है। जायसी ने 'पद्मावत' में लिखा है :

किरिसुन करा चढ़ा ओहि माँथे। तब सो छूट अब छूट न नाथे।

कभी-कभी व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम भी बढ़ जाते हैं। गुजराती में शब्द '*अमदाबाद*'[१] है। उसे बढ़ाकर और भाषाओं में *अहमदाबाद* कर लिया गया है। '*प्लेटो*' का नाम अरबी में '*अफ़लातून*' हो गया है। यह शब्द तो बहुत बढ़ गया है। यही दशा '*सिकन्दर*' की भी हुई है। वह खुद बहुत बड़ा था तो उसका नाम भी क्यों न बढ़ता? अरबी में यों तो प्रायः उसे 'जुलकरनैन' कहते हैं पर कभी-कभी *इसकंदर* भी कहा गया है। *इसकंदर जुलकरनैन* क़ुरान में आता है। आश्चर्य है कि इस 'इसकंदर' शब्द का प्रयोग हिन्दी में भी मिलता है। जायसी ने 'पद्मावत' में लिखा है :

हँलगि राज खरग बर लीन्हा।
इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा॥

यहाँ 'इसकंदर' के साथ 'जुलकरन' शब्द भी आया है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है क़ुरान में भी 'इसकंदर जुलकरनैन' आता है। अतः इस आधार पर यह कहना असमीचीन न होगा कि '*सिकंदर*' का बढ़ा रूप '*इसकंदर*' भारत में नहीं बढ़ा है अपितु अरबी से बढ़ा-बढ़ाया ले लिया गया है।

शब्दों का यह बढ़ना सभी भाषाओं में पाया जाता है। यों ऊपर इसके पर्याप्त उदाहरण दिये गए हैं, पर इसका आशय यह नहीं कि शब्द प्रायः बढ़ते हैं। शब्दों का घिसना या छोटा होना ८० प्रतिशत होता है तो बढ़ना केवल २० प्रतिशत। इसका कारण यह है कि शब्दों में विकार प्रायः मुख-सुख या उच्चारण-सुविधा के लिए होता है और शब्दों के घिसने या छोटे होने से जो सुविधा बोलने में होती है वह शब्दों को बड़ा कर लेने से कुछ विशिष्ट अवसरों को छोड़कर (जैसे 'कृपा' से 'किरिपा') प्रायः नहीं होती।

---

१. गुजराती शब्द की दृष्टि से तो हिन्दी में बढ़ा है, पर यथार्थतः शुद्ध शब्द 'अहमदाबाद' ही है जो 'अहमद' के नाम पर बना है।

३ :: शब्द उलटते हैं

बात विचित्र और आश्चर्यजनक है, पर सच्ची है, अतः कहना पड़ता है कि शब्द उलटते-पलटते हैं। उनमें कभी इधर का स्वर उधर तथा उधर का स्वर इधर, या इसी प्रकार उधर का व्यंजन इधर और इधर का व्यंजन उधर हो जाता है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी। आपने ग्रामीणों तथा रिक्शे वालों को '*लखनऊ*' के स्थान पर '*नखलऊ*' कहते सुना होगा। यदि ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि '*लखनऊ*' में उलट-फेर होने से '*नखलऊ*' हो गया है। यही शब्दों का उलटना है।

भाषा-विज्ञान की विशिष्ट शब्दावली में शब्दों के इस उलट-फेर को 'विपर्यय' या 'परस्पर विनिमय' कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'मेटाथीसिस' (Metathesis) की संज्ञा दी गई है। शब्दों का यह उलटना कभी-कभी असावधानी के कारण और यों प्रायः मुख-सुख के लिए होता है।

यदि इस उलटने पर शास्त्रीय दृष्टि डालनी चाहें तो इसके निम्नांकित कई भेद-विभेद हो सकते हैं।

पहले के दूरी और समीपता की दृष्टि से दो भेद होंगे—

१. पार्श्ववर्ती विपर्यय—वह उलट या विपर्यय जिसमें पास-पास के अक्षर (syllable) स्वर या व्यंजन एक-दूसरे का स्थान लेते हैं। जैसे '*अमरूद*' से '*अरमूद*'। यहाँ 'म' और 'र' ने, जो पास-पास हैं, अपना

स्थान बदल लिया है।

२. दूरवर्ती विपर्यय—यह पार्श्ववर्ती विपर्यय का उलटा होता है। इसमें दूर के अक्षर, स्वर या व्यंजन एक दूसरे का स्थान लेते हैं। जैसे लखनऊ से नखलऊ। यहाँ 'ल' और 'न' ने, जो दूर-दूर हैं तथा जिनके बीच में 'ख' है, अपना स्थान बदल लिया है।

आगे इन दोनों में प्रत्येक के स्वर, व्यंजन तथा अक्षर (syllable) के आधार पर तीन-तीन भेद हो सकते हैं। इस प्रकार विपर्यय के कुल छः भेद हुए।

१. पार्श्ववर्ती स्वर-विपर्यय—इसमें पास-पास के दो स्वर एक-दूसरे का स्थान ले लेते हैं। पुरानी हिन्दी का 'कछु' आजकल 'कुछ' हो गया है। यहाँ 'कछु' में पहले 'अ' स्वर था और बाद में 'उ', पर बदलने पर 'कुछ' में पहले 'उ' स्वर हो गया और बाद में 'अ'। 'जानवर' से 'जनावर' (इसका प्रयोग देहातों में होता है) भी इसी श्रेणी का विपर्यय है।

२. दूरवर्ती स्वर-विपर्यय—इसमें दूर-दूर के स्वर एक-दूसरे का स्थान ले लेते हैं। भोजपुरी में 'टटका' शब्द कहीं-कहीं 'टाटक' हो गया है। इसमें 'का' का 'आ' 'ट' पर आ गया है और उसके स्थान पर 'ट' का 'अ' चला गया है। 'फाटक' से 'फटका' में भी यही बात है।

३. पार्श्ववर्ती व्यंजन-विपर्यय—इसमें आस-पास के व्यंजनों को एक-दूसरे का स्थान लेना पड़ता है। 'चिह्न' शब्द आजकल 'चिन्ह' लिखा तथा पढ़ा जाता है। इसमें 'न्' और 'ह्' ने अपना-अपना स्थान एक-दूसरे के लिए छोड़ दिया है। 'उकसाना' शब्द 'उसकाना' हो गया है। यहाँ भी वही बात है। 'क्' का स्थान 'स्' तथा 'स्' का स्थान 'क्' ने ले लिया है।

४. दूरवर्ती व्यंजन-विपर्यय—इसमें दूर के व्यंजन एक-दूसरे के स्थान पर आते हैं। 'लखनऊ' से 'नखलऊ' इसी प्रकार का उदाहरण है। इसमें 'ल्' और 'न्' दूर-दूर के व्यंजन हैं और दोनों ने एक-दूसरे के

स्थान ले लिये हैं।

५. पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय—इसमें पास-पास के अक्षर (Syllable या स्वर और व्यंजन का मिश्रित रूप जैसे क, का, थी आदि) एक-दूसरे का स्थान ले लेते हैं। इसके उदाहरण नहीं मिलते। बच्चे आपस में गुप्त रूप से बात करने के लिए कभी-कभी उलटकर बात करते समय इसका सहारा लेते हैं, जैसे 'चौकीदार' से 'दारचौकी' आदि। सुनते हैं महाकवि वाल्मीकि को इसका सहारा लेना पड़ा था। वे एक डाकू थे और दिन-रात 'मारा' या 'मरा' किया करते थे।[1] यह 'मरा' ही पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय से 'राम' हो गया और वे 'मरा' कहते हुए भी 'राम' कहने लगे। इसी के फलस्वरूप उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और वे इतना ऊँचा उठकर हम भारतीयों का नाम ऊँचा कर सके। इस प्रकार शब्दों के इस उलटने ने हमारा कितना बड़ा भला किया है, कहा नहीं जा सकता! पर हम विपर्यय के प्रति बड़े ही अकृतज्ञ हैं। अंग्रेज़ों ने मथुरा को मुथरा या मुटरा ('अ' और 'उ' में विपर्यय) करके बेचारे विपर्यय को शरण दी थी तो उनके जाते ही 'मुटरा' को 'मथुरा' कर हमने उसे निकाल बाहर किया।

६. दूरवर्ती अक्षर-विपर्यय—यह पार्श्ववर्ती अक्षर-विपर्यय का उलटा है। इसमें अक्षर दूर के होते हैं। इसके भी उदाहरण नहीं मिलते।

यहाँ तक हम लोग शब्दों के उलटने या विपर्यय पर शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार कर रहे थे। अब कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

विपर्यय या शब्दों का उलटना एक अशुद्धि है और अशास्त्रीय है, पर दुःख है कि बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी का प्रसिद्ध नाम 'बनारस' इस अशुद्धि का शिकार हो चुका है। वरुणा और असी की सीमा के

---

१. जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

—तुलसी

बीच बसने के कारण काशी का नाम 'वाराणसी' पड़ा था। 'वाराणसी' शब्द विकसित होकर या बिगड़कर आज 'बनारस' हो गया है। यदि हम ध्यान दें तो 'व' का 'ब' तथा 'ण' का 'न' होने से 'बारानसी' या 'बरानस' शब्द बनना चाहिए था, पर शब्द 'बरानस' न बनकर 'बनारस' बना। इसका रहस्य यह है कि यहाँ भी विपर्यय महाराज घुस आए और 'र' के स्थान पर 'न' तथा 'न' के स्थान पर 'र' करके शब्द को उलट-पुलटकर 'बनारस' बना दिया। देव-भाषा संस्कृत, शास्त्रीयता तथा पांडित्य के केन्द्रस्थल को भी इस अशुद्धि से न बचते देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। संस्कृत के स्थान पर ग्रामीण भाषा अवधी में 'रामचरित मानस' लिखने के कारण जिन बनारस के पण्डितों ने तुलसी का इतना विरोध किया था, भला उन्होंने अपनी पुनीत नगरी के नाम में इतनी बड़ी अशुद्धि कैसे बरदाश्त की, यह समझ में नहीं आता। शायद शब्दों के उलटने या विपर्यित होने का शक्ति इतनी अतुल है कि पण्डितों का पांडित्य उसे परास्त न कर सका।

स्वयं संस्कृत भाषा भी इस अशुद्धि या दोष से अछूती नहीं है। 'हिंस' का अर्थ होता है 'हिंसा करना' और इसी से 'सिंह' बनता है। कहना न होगा कि यहाँ भी शब्द उलट गया है। 'आवाहन' और 'आह्वान' दोनों शुद्ध संस्कृत शब्द हैं और दोनों का अर्थ भी एक ही है। यथार्थतः यहाँ 'आह्वान' शब्द तो शुद्ध है पर 'आवाहन' उसका विपर्ययग्रस्त रूप है। यह उलट बहुत पहले हो गई थी और विपर्ययग्रस्त रूप भी प्रचलित हो गया था, अतः वैयाकरणों एवं कोषकारों को भी विपर्यय की शक्ति के आगे सिर झुकाकर इस अशुद्ध रूप को शुद्ध समझ अपने ग्रन्थों में स्थान देना पड़ा।

'खन्' एक संस्कृत धातु है जिसका अर्थ 'खोदना' होता है। प्रारम्भ में सम्भवतः मनुष्य नाख़ून से ही ज़मीन खोदता था और इसी कारण नाख़ून को 'नख' की संज्ञा दी। यह 'नख' 'खन' के विपर्यय से बना है।

'*नारिकेल*' और '*नालिकेर*' में भी यही बात है। आप्टे आदि के प्रामाणिक कोषों में इन दोनों को शुद्ध संस्कृत शब्द के रूप में दिया गया है, पर तथ्य यह है कि शुद्ध और प्राचीन शब्द '*नारिकेल*' है और '*नालिकेर*' उसका विपर्ययग्रस्त, उलटा, विकसित या अशुद्ध रूप है। यह रूप भी काफ़ी प्राचीन है, अतः '*आवाहन*' की भाँति इसे भी स्थान देना पड़ा है।

आज की साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू में भी इस प्रकार के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। संस्कृत में 'वारि' = देने वाला होने के कारण बादल का नाम '*वारिद*' था। इसमें 'व' का 'ब' तथा 'र' का 'ल' होने से एवं 'द' और 'ल' में उलट-फेर होने से '*वारिद*' का हिन्दी में '*बादल*' हो गया। इसी प्रकार 'अंगुलि' से 'उँगली', '*पत्र*' (पत्र्) का '*परत*', '*तिलक*' का '*टिकुली*', '*चक्र*' से '*चरखा*', '*चत्वाल*' का '*चबूतरा*', '*बिडाल*' का '*बिलार*', '*सन्धि*' का '*सेंध*' तथा '*आम्लका*' का '*इमली*' भी शब्दों में विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हैं। कुछ विपर्यय अस्पष्ट भी होते हैं। उदाहरणस्वरूप '*स्नान*' से '*नहान*', '*गृह*' से '*घर*', '*नग्न*' से '*नंगा*' तथा '*जिह्वा*' से '*जीभ*' विपर्यय ही हैं, पर स्पष्ट ज्ञात नहीं होते। पहले '*स्नान*' को लीजिए। स्नान (स्नान) में 'स' 'ह' में परिवर्तित होकर बीच में आ गया है और प्रथम 'न' को उसके स्थान पर जाना पड़ा है; इस प्रकार '*स्नान*' से विपर्ययग्रस्त रूप '*नहान*' बना है। 'गृह' में 'ऋ' 'र' होकर अन्त में चली गई है और ग + ह = घ होकर '*घर*' बना है। '*नग्न*' में अन्तिम न का 'अ' 'आ' बनकर 'ग' में लगा है और उसे 'गा' बना दिया है तथा आधा 'न' बीच में आने से '*नंगा*' हो गया है। '*जिह्वा*' में 'व' 'न' होकर 'ह' के पूर्व आ गया है और व + ह = भ होने से 'जिभ' या '*जीभ*' हो गया है।

उर्दू के *फलीता*, *तगमा*, *लहमा*, *मुचल्का*, तथा बर्फ आदि शब्द भी विपर्ययग्रस्त हैं। इनके शुद्ध शब्द क्रमशः *फ़तीलह*, *तमगा*, *लमुहा*, *मुकल्चह*, तथा *बफ़्र* हैं। इनमें दो शब्दों (बर्फ तथा मुचल्का) का

तो वे मौलवी भी प्रयोग करते हैं जिनका शीन क़ाफ़ बहुत दुरुस्त है तथा जो हत्तुलइमकान अशुद्ध शब्द नहीं बोलते। उन्हें क्या पता कि भाषा की कुछ स्वाभाविक अशुद्धियाँ जीवन में इतना घर कर जाती हैं कि उनसे पीछा छुड़ाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो जाता है।

ग्रामीण तथा अशिक्षित लोगों की बोली में तो उलटे-पुलटे या विपर्ययग्रस्त शब्दों की संख्या और भी बड़ी है। '*डूबना*' आज का शुद्ध शब्द है, पर ग्रामीण बोलियों में '*बूड़ना*' का प्रयोग चलता है। जायसी ने कई सौ वर्ष पूर्व लिखा था :

कुम्भकरन कइ खोपड़ी बूड़त बाँचा भी उँ।

इसका आशय यह है कि आज देहातों में प्रचलित '*बूड़ना*' शब्द ही अधिक प्राचीन है और '*डूबना*' जो आज का साहित्यिक शब्द है, उसका विपर्ययग्रस्त रूप है।

'*उकसाना*' से '*उसकाना*' को ऊपर देख चुके हैं। '*पहुँचना*' के स्थान पर भोजपुर क्षेत्र में '*चहुँपना*' बोलते हैं। यह शब्द भी विपर्यय-ग्रस्त है। अन्य उदाहरणों में '*परिधान*' से '*पहिरन*', '*बुकचः*' से '*बकुचा*', '*गरुड़*' से '*गड़ुर*', '*नजदीक*' से '*नगीच*', '*तरोई*' से '*तोरई*', '*उल्का*' से '*लुक्क*', '*घुटना*' से '*ठेघुना*', '*जानवर*' से '*जनावर*', '*इष्टका*' से '*इकटा*', '*ब्राह्मण*' से '*ब्राम्हन*'; '*ब्रह्मा*' से '*ब्रम्हा*', '*अमरूद*' से '*अरमूद*', '*रिक्शा*' से *रिस्का*, '*आदमी*' से '*अमदी*', '*बकस*' से '*बसक*', '*नुक़सान*' से '*नसकान*', '*नुसख़ा*' से *नुख़सा*, '*यहाँ*' से '*हियाँ*', '*रूमाल*' से '*उरमाल*', '*ससुर*' से '*सुसरा*' या '*सुसर*', '*चाकू*' से '*काचू*', '*निरादर*' से '*निदरना*', '*बीमार*' से '*बेराम*', '*बीमारी*' से '*बेरामी*', '*चिकुर*' से '*चिरकी*' (शिखा), '*इलज़ाम*' से '*इजलाम*', '*कराहना*' से '*कहरना*', '*मुजरिम*' से '*मुलजिम*', '*कुफ़ल*' से '*कुलुफ़*', '*वोढ*' से '*ढोव*', '*लघु*' से '*हलुक*', '*बिंदु*' से '*बूँदी*', '*इक्षु*' से '*उखि*' तथा '*एरंड*' से '*रेंडी*' आदि हैं। इनमें कुछ को तो साहित्य में भी देखा जा सकता है।

लूक (सं० उल्का)

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिन ही लूक परन बिधि लागे।

—तुलसी

निदरना (सं० निरादर)

एक-एक जीतहिं संसारा। उनहिं *निदरि* पावत को पारा।

—सबलसिंह

कहरना (हिन्दी कराहना)

श्रीपति सुकवि यों वियोगी *कहरन* लागे,

मदन की आगि लहरन लागी तन में।

—श्रीपति

कुलुफ (अर० क़ुफ़्ल = ताला)

कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक सँदुक पट अटकै।

—सूर

हरुअ—हलुक (सं० लघु)

कोई हरुअ जानु रथ हाँका।

—जायसी

अंग्रेज़ी के भी बहुत से शब्द भारत में, विशेषतः ग्रामीण जनता में, विपर्ययग्रस्त हो गए हैं। '*सिगनल*' से '*सिंगल*', 'डेस्क' से 'डेक्स' तथा '*कनेक्शन*' से '*कनस्कन*' इसके अच्छे उदाहरण हैं। पर इसका बदला अंग्रेज़ों ने भी लिया है। ऊपर अंग्रेज़ों द्वारा '*मथुरा*' का '*मुथरा*' होने का उल्लेख किया जा चुका है। उन्होंने '*मुथरा*' के अतिरिक्त '*जमुना*' से '*जुमना*' तथा '*देहली*' से '*देलही*' भी कर दिया है।

शब्दों का यह उलटना या विपर्यय सभी भाषाओं में पाया जाता है। यों जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यह एक अशुद्धि है, पर भाषा को चिकनी तथा उच्चारण को सरल बनाने में इसका बहुत बड़ा हाथ है।

४ : : शब्द बोलते हैं

शब्दों का मुँह तो नहीं होता, पर वे बोलते हैं। पर हाँ, सभी लोग उनकी आवाज़ नहीं सुन सकते। रेडियो-स्टेशनों से प्रसारित कार्यक्रमों को कर्णगत करने के लिए जिस प्रकार विशेष कान या रेडियो की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार शब्दों की बातें सुनने के लिए कुछ अध्ययन और उससे अधिक अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। इस अभ्यास के बाद आप देखेंगे कि शब्द बोलते ही नहीं खूब बोलते हैं।

एक बात और। शब्दों का बोलना निरर्थक नहीं होता। वे आपको इतिहास, समाज, धर्म तथा लोगों के विश्वास आदि से सम्बन्धित अनेक बातें बतलाते हैं और वे बातें इन विषयों की पुस्तकों से कहीं अधिक सत्य होती हैं। आप किसी पुस्तक या व्यक्ति की बात झूठी ठहरा सकते हैं, पर किसी शब्द द्वारा कही गई बात काटने या झूठी ठहराने की आपमें हिम्मत नहीं। यदि कोशिश भी करें तो कृतकार्य नहीं हो सकते, क्योंकि शब्द बेचारे झूठ बोलना जानते ही नहीं। आपके साथ रहकर भी वे आपकी इस बुराई से अछूते हैं। इसी कारण पूर्व-ऐतिहासिक काल की संस्कृति आदि के अध्ययन के लिए अब शब्दों का सहारा लिया जाने लगा है। इसकी नींव मैक्समूलर ने रखी थी। अंग्रेज़ी में इसे Linguistic Palaentology तथा जर्मन में Urgeschichle कहते हैं।

इसके अतिरिक्त शब्द आपको तरह-तरह की कहानियाँ सुनाकर

आपका मनोरंजन भी करते हैं—किसी भी खेल-तमाशे से अधिक। यदि आपने शब्दों से बात सुननी सीख ली तो आप कभी भी एकाकीपन की मनहूसियत का अनुभव न करेंगे। आपके पास कोई व्यक्ति न हो, कोई मनोरंजन का साधन न हो, कोई पुस्तक न हो, आप शब्दों के संसार में प्रवेश कीजिए, वे आपका बराबर साथ देंगे। आपके लिए वे एक ही साथ व्यक्ति, पुस्तक और मनोरंजन का साधन सभी-कुछ बन जायँगे। उनकी यह महत्ता, उदारता और परोपकारिता है।

शब्द बोलते तो सभी हैं, पर जिस प्रकार सभी व्यक्ति बात करने लायक नहीं होते और सभी पुस्तकें पढ़ने योग्य नहीं होतीं, वैसे ही सभी शब्दों से बातें करना या उनका बोलना सुनना सार्थक नहीं होता। यहाँ कुछ चुने हुए शब्दों का बोलना हम लोग सुनेंगे।

संस्कृत का एक शब्द है '*गोघ्न*'। 'गोघ्न' का अर्थ अतिथि होता है। अब ज़रा इसके धात्वर्थ पर ध्यान दीजिए। इसमें गो (गाय) और घ्न (मारना) दो शब्द हैं। 'पद्मचन्द्रकोष' में इसका अर्थ है 'गौर्हन्यते यस्मै' अर्थात् जिसके लिए 'गौ' मारी जाती है। इस प्रकार यह शब्द आपसे बोल रहा है या कह रहा है कि प्राचीन काल में एक समय ऐसा भी था जब अतिथियों के स्वागत के लिए गायें मारी जाती थीं। बाद के साहित्य में गाय के लिए '*अघ्न्या*' शब्द मिलता है। '*अघ्न्या*' का अर्थ है 'न मारने योग्य'। इन दोनों शब्दों द्वारा बतलाई गई बातों के आधार पर लगता है कि पहले लोग गो-भक्षण करते थे और विशेषतः अतिथियों के आने पर उनका स्वागत 'गो-मांस' से होता था। इसी कारण अतिथि का पर्याय '*गोघ्न*' हुआ। पर, बाद में खेती तथा दूध आदि की दृष्टि से उसे उपयोगी समझकर उसका वध बन्द किया गया और तब गाय का नाम '*अघ्न्या*' पड़ा। स्वयं 'अघ्न्या' शब्द भी इसी ओर संकेत करता है कि गाय कभी 'घ्न्या' भी थी। इस प्रकार '*गोघ्न*' और '*अघ्न्या*' शब्द आपकी पुरानी संस्कृति के विषय में बड़ी विचित्र बात बतलाते हैं। यों, इस बात के और भी प्रमाण

मिलते हैं कि अतिथियों के सत्कार के लिए प्रायः महोक्ष (बड़े बैल) मारे जाते थे।[१] साथ ही विद्वान् पुत्र पाने के लिए लोग मांसौदन घी के साथ गाय या भेड़ का मांस खाते थे।[२]

यह तो रही शब्दों में सांस्कृतिक इतिहास की बात। वस्तुओं के प्रयोग के विषय में एक उदाहरण लीजिए। गेहूँ के बहुत से पर्यायों में से '*गोधूम*', '*बहुदुग्ध*' तथा '*यवनप्रिय*' तीन शब्द लीजिए। '*गोधूम*' (गो + धूम) शब्द संकेत करता है कि कभी गायों को सूखे पौधों से धुआँ दिया जाता था। अब भी देहात में पशुओं को मच्छर से बचाने के लिए सूखी घास आदि या भूसे की गाँठ का धुआँ देते हैं। '*बहुदुग्ध*' शब्द बतलाता है कि शायद बाद में गायों ने '*गोधूम*' के हरे या सूखे पौधों को खाना शुरू किया तो उनके दूध में वृद्धि हुई, अतः '*गोधूम*' के अतिरिक्त इस पौधे को '*बहुदुग्ध*' भी कहा जाने लगा। आगे चलकर तो आर्यों ने देखा कि यवन लोग इसे (इसके दाने को) खाते हैं और बड़े प्रेम से खाते हैं तो इसे '*यवनप्रिय*' कहा। गेहूँ के 'यवन-भोज्य' तथा 'म्लेच्छ भोजन' नाम भी मिलते हैं, जो इस अनुमान की और भी पुष्टि करते हैं। बाद में शायद 'यवनों' या 'म्लेच्छों' के ही अनुकरण पर आर्यों ने इसे खाना शुरू किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन शब्दों ने आर्यों में 'गेहूँ' के प्रयोग का पूरा इतिहास ही हमारे सामने स्पष्ट कर दिया।

कुछ शब्द हमारे पूर्वजों के विश्वास, अन्ध-विश्वास तथा उनके ज्ञान की सीमाओं को स्पष्ट कर देते हैं। पृथ्वी के कुछ पर्यायों को लीजिए। इसका एक प्राचीन नाम '*अचला*' (न चलने वाली) मिलता है। इसका आशय यह है कि एक समय—शायद आरम्भ में—आर्य

---

१. भारत की प्राचीन संस्कृति—डॉ० रामजी उपाध्याय, पृ० ७० ।

२. बृहदारण्यक उपनिषद् ६-४-१८ ।

लोग 'पृथ्वी' को स्थिर और न चलने वाली मानते थे।[१] इसका दूसरा नाम '*गो*' (जो चले) मिलता है। यह शब्द बतलाता है कि बाद में लोग 'पृथ्वी' को '*अचला*' के स्थान पर 'चला' मानने लगे अर्थात् पृथ्वी की गति का उन्हें पता चल गया। इस ज्ञान के बाद ही भारतीय ज्योतिष में प्रगति प्रारम्भ हुई होगी। पृथ्वी का एक नाम '*मेदिनी*' भी है। 'मेदिनी' उसे कहते हैं जो चरबी (मेद) से उत्पन्न हो। इसका अर्थ यह है कि कभी आर्यों को यह भी विश्वास था कि पृथ्वी चरबी से उत्पन्न हुई है।[२]

कौए के बहुत से नामों में '*एकाक्ष*' या '*एकनयन*' भी है। इसका आशय यह है—या ये शब्द यह बोल रहे हैं—कि कभी हमारे पूर्वजों का विश्वास था कि कौए के केवल एक आँख होती है। '*एकाक्ष*' और '*एकनयन*' शब्दों का यह बोलना 'बावन तोले पाव रत्ती' ठीक है। उस प्राचीन विश्वास की परम्परा अब भी देहातों में है[३] और वहाँ अब भी लोग इस विश्वास को सत्य मानते हैं। इसके अतिरिक्त अपना प्रसिद्ध न्याय 'काकाक्षिगोलक न्याय' भी पूर्वजों के इस विश्वास की गवाही देता है। इस प्रकार ये शब्द प्राचीन आर्यों के विश्वास की यह विचित्र कहानी युग-युग तक कहते रहेंगे।

'चन्द्रमा' के कुछ पर्यायों को लीजिए। '*मृगांक*', '*एणांक*' (एण—काला हिरण) तथा '*मृग लांछन*' आदि शब्द बतलाते हैं कि आर्य चन्द्रमा के अंक के काले धब्बे को हिरण या काला हिरण मानते थे। '*शशांक*' '*शशि*' या '*शशलांछन*' शब्द बतलाते हैं कि वे उसे खरहा

१. पृथ्वी के '*निश्चला*' तथा '*स्थिरा*' नाम भी उसी काल के हैं और इस बात को पुष्ट करते हैं।
२. एक पौराणिक उपाख्यान के अनुसार पृथ्वी मधु और कैटभ राक्षसों की चरबी से उत्पन्न हुई थी।
३. देहातों में लोग मानते हैं कि कौए के अक्ष-गोलक दो होते हैं, पर पुतली एक ही रहती है जो बारी-बारी से दोनों में जाती है।

(शश) भी मानते थे। '*अज*' शब्द बतलाता है कि चन्द्रमा को वे लोग न जन्मने वाला मानते थे। यह शायद बहुत पहले विश्वास था। बाद का चन्द्रमा का एक नाम '*अत्रिजात*' या '*अत्रि नेत्रज*' मिलता है। इससे यह पता चलता है कि बाद में आर्यों का यह विश्वास हो गया कि चन्द्रमा अत्रि मुनि की आँख से निकला है। यह नाम हमें इस पौराणिक कथा की याद दिलाता है कि 'अत्रि' मुनि ने एक बार पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप उनकी आँख से उनके पुत्र-रूप 'चन्द्रमा' का जन्म हुआ। 'चन्द्रमा' के '*सिन्धुज*' तथा '*सिन्धुजन्मा*' आदि नाम भी मिलते हैं। इन शब्दों के अनुसार आर्य 'चन्द्रमा' को सिन्धु से उत्पन्न मानते थे। यह विश्वास समुद्र-मन्थन नामक पौराणिक आख्यान पर आधारित हो गया। चन्द्रमा का '*समुद्र नवनीत*' (नवनीत मथने पर निकलता है) नाम समुद्र-मन्थन को और भी स्पष्ट कर देता है। यों कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक वह अंश है, जो उसमें से निकल गया और अब पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। साथ ही उसके '*पृथ्वी*' में से निकलने से जो गर्त्त बना वही पानी भरने पर समुद्र हो गया। यदि यह तथ्य सचमुच वैज्ञानिक है तो '*सिन्धुजन्मा*' यह भी बतलाता है कि हमारे पूर्वज प्राचीन आर्य भी इस वैज्ञानिक तथ्य से अवगत थे।

आजकल '*श्मशान*' उस स्थान को कहते है जहाँ मुरदे जलाए जाते हैं, पर स्वयं '*श्मशान*' शब्द कुछ और बातें बतलाता है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में लिखा है कि '*श्मशान*' (शेरते यत्र शवाः) शब्द का धात्वर्थ हमें बतलाता है कि '*श्मशान*' मुरदा गाड़ने का स्थान था न कि जलाने का। अतः '*श्मशान*' शब्द आपसे कहता है कि आप पहले मुरदे जलाते नहीं थे अपितु मुसलमान और ईसाइयों की भाँति गाड़ते थे। आजकल विद्वान् अन्य आधारों पर भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आर्य पहले मुरदे गाड़ते थे। मुरदा जलाने की प्रथा उन्होंने अनार्यों से ग्रहण की है।

खाने के तम्बाकू का एक नाम '*सुर्ती*' है। '*सुरती*' या '*सुर्ती*' शब्द पर ध्यान दीजिए। इसका अर्थ है 'सूरत की'। शब्द बतला रहा है कि यह 'सूरत' नगर से आई। तथ्य यह है कि तम्बाकू का पुर्तगालियों के साथ भारत में प्रवेश हुआ और उनका प्रधान स्थान 'सूरत' शहर था। इसी कारण 'सूरत' शहर से आने वाली चीज़ 'सूरत की' या '*सुर्ती*' कहलाई। देखिए अपने आदि-स्थान के सम्बन्ध में यह शब्द कितने पते की बात बतला रहा है।

मोटे रूप में यहाँ चीनी तीन प्रकार की होती है। कच्ची चीनी को '*शक्कर*' कहते हैं। '*शक्कर*' शब्द संस्कृत '*शर्करा*' से निकला है, अतः निश्चय ही चीनी का यह रूप भारतीय है। '*चीनी*' उस चीनी को कहते हैं जो पकी और सफेद होती है, पर रवेदार नहीं होती। जैसा कि 'चीनी' शब्द बतला रहा है कि 'चीनी' का यह रूप सर्वप्रथम भारत में चीन से आया और उन्हीं लोगों से सम्भवतः भारतीयों ने इस प्रकार की चीनी बनानी सीखी। चीनी का एक तीसरा '*मोरस*' नाम भी कहीं-कहीं मिलता है। '*मोरस*' मिल की 'रवेदार' या 'दानेदार' चीनी को कहते हैं। '*मोरस*' शब्द '*मॉरिशस*' का बिगड़ा हुआ रूप है। यहाँ '*मोरस*' शब्द स्पष्ट कह रहा है कि इस प्रकार की चीनी भारत में पहले मारिशस से आती थी। कुछ दिन पूर्व के व्यापारिक भूगोल में भी यही बात मिलती है।

मिठाई बनाने या बेचने वाले को '*हलवाई*' कहते हैं। '*हलवाई*' शब्द 'हलवा' से बना है और इस प्रकार 'हलवा' बनाने वाला ही मूलतः '*हलवाई*' है। यह शब्द यहाँ यह बतला रहा है कि प्रारम्भ में '*हलवाई*' विशेषतः 'हलवा' ही बनाते और बेचते थे। आज हलवाई प्रायः केवल मिठाई और पूरी आदि बनाते और बेचते हैं, यह बाद का विकास है।

'*स्याही*' रोशनाई का प्रचलित नाम है। 'स्याह' फारसी शब्द है और इसका अर्थ काला होता है। यहाँ यह शब्द स्पष्टतः बतला रहा है

कि आरम्भ में 'रोशनाई' केवल काले रंग की होती थी।

'*श्रुति*' वेद का नाम है, पर '*श्रुति*' का धात्वर्थ है 'श्रवणेन्द्रिय-जन्य ज्ञान'। इस प्रकार 'श्रुति' शब्द बतलाता है कि वेद पढ़े नहीं अपितु सुने जाते थे। यह कहा भी जाता है कि पहले वेदों की लिखित परम्परा नहीं थी। गुरु लोगों से सुनकर शिष्य लोग इन्हें याद कर लेते थे और फिर वे लोग अपने शिष्यों को सुनाकर कण्ठाग्र कराते थे। इस प्रकार श्रुति रूप में ही वेदों की परम्परा थी।

आज हिन्दी में '*काग़ज़*' को 'पत्र' कहते हैं। 'पत्र' का मूल अर्थ 'पत्ता' है, अतः स्पष्ट है कि पहले आर्य पत्ते पर लिखते थे। आज भी सहस्रों पुराने ग्रन्थ 'तालपत्र' आदि पर लिखे मिलते हैं।

'लोटे' के साथ अपने यहाँ एक बरतन '*गिलास*' चलता है। इसका मूल अंग्रेज़ी शब्द '*ग्लास*' (शीशा) है। इस स्थिति से यह अनुमान लगता है कि यहाँ पहले-पहल शीशे के ही 'गिलासों' का प्रचार हुआ। बाद में धीरे-धीरे 'धातु' आदि के '*गिलास*' बनने लगे।

अंग्रेज़ी में कलम को '*पेन*' (Pen) कहते हैं। '*पेन*' शब्द लैटिन शब्द '*पेन्ना*' ('Penna') से बना है, जिसका अर्थ पंख होता है। यह शब्द स्पष्ट कह रहा है कि पहले 'कलम' पंख के बनते थे। यह परम्परा भारत में भी रही है। बहुत सी पुरानी तसवीरों में पंख के कलम दिखाई देते हैं।

'*दुहिता*' का अर्थ पुत्री या लड़की होता है, पर इसका धात्वर्थ 'दूध दुहने वाली' होता है। इसका आशय यह है कि पहले घर में लड़कियाँ ही दूध दुहती थीं।

'ननद' या 'नन्द' शब्द संस्कृत शब्द '*ननन्द*' से निकला है। '*ननन्द*' का अर्थ है 'जो प्रसन्न न हो।' आज भी 'ननद' और 'भावज' में प्रायः यही व्यवहार रहता है। भावजों के बहुत-कुछ करने पर भी ननदें उनसे प्रसन्न नहीं रहतीं। यह शब्द बतला रहा है कि ननद और भावजों का यह व्यवहार या सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ

रहा है।

अंग्रेज़ी का 'पेपर' (Paper) शब्द लेटिन शब्द 'पेपीरस' (Papyras) से निकला है। Papyras एक घास का नाम है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले कागज़ इसी घास से बनाया जाता था।

मुसलमान लोग अमुसलमान लोगों को 'काफ़िर' कहते हैं। इसी कारण उनके शब्दों में हिन्दू भी 'क़ाफ़िर' हैं। इसके साथ ही लोग यह भी समझते हैं कि 'क़ाफ़िर' शब्द गन्दा है और अमुसलमानों को 'क़ाफ़िर' नाम देने में मुसलमानों का कोई बुरा ख़याल था। आज मुसलमान लाख कहें कि आपको 'क़ाफ़िर' कहने में हम लोगों का कोई गन्दा ख़याल न था तो हम-आप न मानेंगे, पर जब 'काफ़िर' शब्द स्वयं बोल रहा है तो मानना ही पड़ेगा। 'क़ाफ़िर' के लफ़्ज़ी माने हैं 'इन्कार करने वाला'। इस प्रकार जिन लोगों ने मुसलमान होना अस्वीकार किया वे लोग अरबी में 'काफ़िर' कहे गए। ज़ाहिर है कि अमुसलमानों का मुसलमानों द्वारा 'क़ाफ़िर' कहा जाना इस रूप में ठीक ही है। तत्त्वतः एक 'ईसाई' के लिए सभी 'अईसाई' काफ़िर हैं और हिन्दू के लिए सभी अहिन्दू भी।

'म्लेच्छ' शब्द से आज लोग 'गन्दा' का अर्थ लेते हैं और मुसलमान इस पर नाराज़ भी होते हैं कि हिन्दुओं ने उन्हें 'म्लेच्छ' नाम दिया। पर, जैसी बात 'काफ़िर' के बारे में है वैसी ही कुछ इसके बारे में भी है। 'म्लेच्छ' का धात्वर्थ है वह व्यक्ति जिसकी भाषा समझ में न आए। जब मुसलमानों का हमसे सम्पर्क हुआ तो स्वभावतः उनकी भाषा हमारी समझ में न आई। इस पर पण्डितों ने उन्हें 'म्लेच्छ' का नाम दिया। और यह उचित भी था; मुसलमानों के लिए इस दृष्टि से हम भी 'म्लेच्छ' थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन दो शब्दों को लेकर इतना घृणा-भाव पैदा हो गया है वे स्वयं सफ़ाई दे रहे हैं। पर, दुःख तो इस बात का है कि हम लोग बेचारे शब्दों की बातें सुनने को तैयार ही नहीं हैं।

ठीक ही कहा है—'लातों के देव बातों से नहीं मानते।'

कुछ थोड़े-से शब्दों का बोलना यहाँ हमने सुना। कहना न होगा कि शब्दों का बोलना मनोरंजक तो है ही, साथ ही सुनने वालों के लिए बड़ा ज्ञानवर्धक भी है। यदि किसी भाषा के सारे शब्दों को इस दृष्टि से छान डाला जाय तो उसके बोलने वालों के विषय में बहुत सी ऐसी महत्वपूर्ण बातें सामने आ सकती हैं जो किसी और प्रकार से स्पष्ट ही नहीं हो सकतीं।

५ : : शब्द मनोरंजक होते हैं

शब्दों की बनावट, उनके अर्थ की विचित्रता, उनकी व्युत्पत्ति तथा उनकी गति आदि का अध्ययन बड़ा मनोरंजक होता है। यों तो लगभग सभी शब्दों का अध्ययन कम मनोरंजक नहीं है पर यहाँ कुछ विशिष्ट शब्दों की आन्तरिक मनोरंजकता का दर्शन किया जायगा।

'बम पुलिस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। विशेषतः उत्तर भारत के लगभग सभी नगरों में इसका प्रयोग सर्वसाधारण तथा बड़े दोनों ही स्तरों के लोगों द्वारा किया जाता है। *'बम पुलिस'* उस पाख़ाने को कहते हैं, जो म्युनिसिपैलिटी या कारपोरेशन की ओर से बनवाया जाता है और जिसकी सफ़ाई आदि का प्रबन्ध भी उसीकी ओर से होता है। यह सार्वजनिक स्थान है और इसका उपयोग सभी कर सकते हैं।

इसमें दो शब्द हैं। प्रथम शब्द 'बम' का तो इस प्रसंग में कुछ विशेष अर्थ नहीं लगता पर दूसरे शब्द 'पुलिस' का अर्थ सिपाही हो सकता है। लोगों का ऐसा ख़याल है कि इसकी देख-रेख म्युनिसिपैलिटी करती है और यदि कोई उसका दुरुपयोग करे तो पुलिस पकड़ लेती है; अतः इसके साथ का 'पुलिस' शब्द कुछ इसी भावना का द्योतक है। पर इस प्रचलित धारणा के मान लेने पर भी सन्तोषजनक समाधान नहीं होता। इसकी शुद्ध व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरंजक और मज़ेदार बात है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी जब भारत में काम करने

लगी तो उसे एक फ़ौज भी मँगानी पड़ी। फ़ौज में प्रधानतः इंग्लैण्ड के निम्न स्तर के लोग थे। ये सिपाही अपने सामूहिक पाख़ानों को मज़ाक में 'बम प्लेस' (Bomb place, बम छोड़ने की जगह या बम की-सी आवाज़ करने की जगह) कहा करते थे। उस समय यह शब्द-समूह या शब्द निम्न वर्ग के सिपाहियों में ही प्रचलित था और वह भी केवल मज़ाक का शब्द था। शायद उसी तरह, जैसे कुछ दिन पहले होस्टल से विद्यार्थी पाख़ाने को 'बड़ी विलायत' और पेशाबघर को 'छोटी विलायत' कहा करते थे।

धीरे-धीरे वह मज़ाक का 'बम प्लेस' ही सर्वसाधारण में प्रचलित हो गया। पहले इसके साथ कुछ विनोदपूर्ण अश्लीलता के भी भाव थे, पर अब व्युत्पत्ति भूल जाने के कारण उसकी कोई गन्ध शेष नहीं है। हाँ, 'बम प्लेस' का 'प्लेस' शब्द अधिक प्रचलन के कारण 'पुलिस' बन गया और इस प्रकार 'बम प्लेस' बेचारा 'बम पुलिस' हो गया है।

'कलदार' रुपये को कहते हैं। 'भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते' की नकल पर 'भज कलदारं, भज कलदारं कलदारं भज मूढ़-मते' भी प्रसिद्ध है। यों इसकी व्युत्पत्ति समझ में नहीं आती। बात यह है कि कार्नवालिस के समय में जब यहाँ रुपया चला तो लोगों ने सुना कि अंग्रेज़ किसी मशीन या कल से रुपया बनाते हैं। इसी आधार पर लोगों ने रुपये को 'कलदार' (कल वाला) कहना शुरू किया। अब यह शब्द अपेक्षाकृत कम प्रयोग में आता है।

ग़ाज़ीपुर ज़िले में गंगा के दाहिने किनारे पर एक गाँव 'रेवतीपुर' है। यह गाँव यदि संसार का सबसे बड़ा गाँव नहीं तो कम-से-कम सब-से बड़े गाँवों में से एक तो अवश्य है। यों 'रेवतीपुर' शब्द पर ध्यान देने से यही अनुमान लगता है कि जैसे भारत के अनेक ग्राम तथा नगर के नामों में 'पुर' लगा है, इसमें भी है और 'रेवती' शायद किसी आदमी का नाम था जिसने इसे बसाया या बलराम की पत्नी 'रेवती', केवल मनु की माता 'रेवती' तथा दुर्गा का एक नाम 'रेवती' आदि में

किसी 'रेवती' का वहाँ से कोई सम्बन्ध है। पर यथार्थतः बात कुछ और ही है। पहले गंगा नदी वहीं बहती थी। बाद में वहाँ रेत पड़ गया और धीरे-धीरे गंगा की उपजाऊ मिट्टी वहाँ पड़ने लगी। इस प्रकार वह स्थान काफ़ी उपजाऊ हो गया। फलतः लोग वहाँ आकर बसने लगे। चूँकि वहाँ 'रेत' (बालू) था, अतः वहाँ के बसने वाले 'रेती पर' बसे कहे जाने लगे। इस प्रकार उस स्थान या 'गाँव' का नाम ही 'रेतीपर' पड़ गया और बाद में और 'पुर' वाले नामों के सादृश्य पर बिगड़कर '*रेवतीपुर*' हो गया। आज उसे देखकर कोई नहीं कह सकता कि कभी यह गाँव रेत या बालू से पूर्ण रहा होगा।

प्रयाग से सुलतानपुर की ओर एक स्टेशन 'कूड़े *भार*' पड़ता है। कुछ लोग इसे 'कू*रे भार*' भी कहते हैं। नाम सुनकर उस गाँव पर दया आती है। इससे बुरा और रद्दी नाम संसार में शायद ही किसी गाँव का हो। 'कूड़ा' (कूड़ा-करकट या रद्दी) तथा 'भाड़' (वही भाड़ जिसके विषय में कहा जाता है—'भाड़ में जाओ मुझसे क्या मतलब') दोनों एक-से-एक बुरे। पर यथार्थता यह है कि इस गाँव का जितना सुन्दर और कलात्मक नाम था उतना शायद ही किसी दूसरे गाँव का हो! न भी हो तो आश्चर्य नहीं। इसके नाम के विषय में कहा जाता है कि बहुत दिन पहले कभी अवध के कोई नवाब उसी रास्ते से होकर निकले थे और दो-एक दिन के लिए वहाँ उनका पड़ाव पड़ा था। नवाब साहब के साथ के किसी शायर ने या खुद नवाब साहब ने उस स्थान का नाम कूचे बहार (बहार की गली) रख दिया। बाद में वहाँ एक बस्ती बसी जो 'कूचे बहार' के नाम से पुकारी जाने लगी। कौन जानता था कि भाषा का ध्वनि-परिवर्तन-नियम बेचारे की यह दुर्दशा कर डालेगा!

आज़मगढ़ ज़िले में एक स्थान '*जीयनपुर*' है। यों देखने में किसी 'जीयन' का बसाया हुआ 'पुर' लगता है और इस प्रकार इसका इतिहास भी बहुत सुन्दर नहीं है। तथ्य यह है कि इसका नाम भी बड़ा ही सुन्दर था, और अंग्रेज़ों ने इसका सारा सौन्दर्य छीन लिया। इसका

पुराना नाम '*ज्ञानानन्दपुर*' था। अंग्रेज़ी में '*ज्ञानानन्दपुर*' विशुद्ध रूप में तो Jnananandpur लिखा जायगा पर अंग्रेज़ों ने *मथुरा* को *मुत्रा*, *लखनऊ* को '*लकनाउ*' तथा *बनारस* को *बेनारेस* लिखने की भाँति इसे भी Gyananandpur लिखा। नाम बड़ा था और शायद तहसील का नाम था, अतः असुविधा से बचने के लिए इसे संक्षिप्त करके जी० एन० पुर (G. N. Pur) किया। बाद में जी० और एन० मिलकर 'जीयन' हो गए और अब यह '*जीयनपुर*' है। सरकारी काग़ज़ों के अतिरिक्त आस-पास के लोग भी उसे अब इसी नाम से पुकारते हैं। वहाँ के लोग जो इस बात से अपरिचित हैं भले क्या जानते हैं कि उनके स्थान का नाम कभी 'ज्ञान' और 'आनन्द' से भरा था!

प्रयाग के कटरा मुहल्ले में इधर तीन-चार वर्षों से एक नये शब्द '*वाली*' का प्रयोग होने लगा है। '*वाली*' का प्रचलित अर्थ है बर्फ़ की कुल्फ़ी, जो चार पहिए की गाड़ी पर रखकर बेची जाती है और अब धीरे-धीरे इसका अर्थ मलाई बरफ़ होता जा रहा है; सम्भव है कुछ दिनों में मीठे बरफ़ के लिए भी इसका सामान्य प्रयोग होने लगे। यह शब्द धीरे-धीरे पूरे नगर में फैल सकता है और फिर तीर्थराज और कोर्टराज का प्रसाद बनकर हिन्दी-प्रदेश में प्रचलन पा सकता है। साथ ही प्रतिकूल परिस्थिति में इसका लोप भी होना असम्भव नहीं है, क्योंकि अभी इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

'*वाली*' शब्द के प्रचलन का श्रेय प्रयागस्थ मनमोहन पार्क के समीप रहने वाले एक फेरी वाले को है। बरफ़ की बिक्री के दिनों में शाम को वह चार पहिए की गाड़ी पर कुलफ़ी का बड़ा-सा बक्स रखकर ज़ोर से चिल्लाता था—पिस्ते वाली है, मिश्री वाली है, मलाई वाली है, पंजाब वाली है। इस शब्दावली में 'वाली' शब्द पर उसका स्वभावतः विशेष जोर पड़ता था। फलतः धीरे-धीरे वह 'वाली वाला' फिर 'बाली वाला' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अब उस प्रकार चिल्लाकर बेचने वाले प्रायः सभी 'बाली, वाले' कहलाते हैं। लड़के—और अब तो बड़े

भी—जब उनके पास बरफ़ ख़रीदने जाते हैं तो बरफ दो या कुलफ़ी दो न कहकर 'बाली दो' कहते हैं। इस प्रकार 'बाली' का अर्थ कम-से-कम कटरा तथा कर्नलगंज मुहल्ले में 'बरफ़' हो गया है। कौन जानता है कि भाषा में कितने शब्दों का प्रचलन इस प्रकार हुआ है। किसी भाषा-शास्त्री ने ठीक ही कहा—'भाषा का बहुत बड़ा भाग अशुद्धियों पर आधारित है।'

हिन्दी का एक बहुत प्रचलित शब्द '*मधुर*' है, जिसका अर्थ मीठा, कोमल तथा सुन्दर आदि होता है। *मधुर* फल, *मधुर* बात, *मधुर* स्मृति, *मधुर* व्यक्तित्व तथा *मधुर* वायु आदि इसके अनेक प्रयोग चलते हैं, पर सभी प्रयोगों में इसका अर्थ अच्छा या मीठा या प्रिय आदि होता है। यही '*मधुर*' शब्द आज की बोलियों (अवधी, भोजपुरी आदि) में '*माहुर*' हो गया है जिसका अर्थ 'ज़हर' होता है। इतने मधुर तथा प्रिय शब्द का विकसित अर्थ इतना अमधुर तथा अप्रिय कैसे हो गया यह समझ में नहीं आता। आश्चर्य इस बात पर भी होता है कि तुलसी आदि में ये दोनों ही शब्द मिलते हैं :

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन *माहुर* मीचू।

तथा

रघुपति चरन हृदय धरि तात *मधुर* फल खाहु॥

यहाँ एक अनुमान यह लगाया जा सकता है कि आज के विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि ज़हर अत्यन्त मीठा होता है। शायद कुछ इसी धारणा से '*मधुर*' बेचारा '*माहुर*' हो गया है। पर, मध्ययुग में जब यह ध्वनि-विकास हुआ, लोग इस वैज्ञानिक तथ्य से अवगत थे, यह सन्देह का विषय है। अतः निश्चय के साथ कुछ कह सकना सम्भव नहीं। सीधी और मनोरंजक बात यही है कि '*मधुर*' ही '*माहुर*' हो गया है।

'*अक्षर*' शब्द लीजिए। यों तो उसका अर्थ 'न नष्ट होने वाला', ब्रह्म, आत्मा तथा मोक्ष आदि बहुत-कुछ होता है पर साधारणतः '*अक्षर*' से हम लोग 'हरफ़' या 'वर्ण' का अर्थ लेते हैं। यही '*अक्षर*'

शब्द अपना 'न नष्ट होने वाला' अर्थ लेकर बनता-बिगड़ता 'अक्खड़' बन गया है, जिसका अर्थ कट्टर, हठी तथा दबंग आदि होता है। कहाँ तो 'अक्षर' जैसा अनक्खड़ शब्द कि जहाँ भी भले-बुरे जिसके लिए चाहें उसका उपयोग करें, उसकी सहायता से जो भी चाहें लिखें और कहाँ वह 'अक्खड़' बन गया जिसके आगे बड़ों को भी झुकने की नौबत आ जाय।

संस्कृत का एक शब्द 'क्षीर' है, जिसके यों तो कई अर्थ होते हैं पर प्रमुख अर्थ दूध है। 'क्षीर' शब्द ही विकसित होकर या विकृत होकर 'खीर' हो गया है, जिसमें 'क्षीर' के अतिरिक्त चावल, चीनी केवड़ा तथा मेवा आदि भी पड़ता है। यह सौभाग्य की ही बात है कि जरा-से ध्वनि-परिवर्तन से क्षीर को चीनी तथा मेवा आदि इतनी अच्छी चीज़ों की प्राप्ति हो गई। 'क्षीर' की विकास-यात्रा यहीं नहीं रुकी है। भोजपुरी में वह 'खीर' से भी आगे बढ़कर 'बखीर' हो गया है। यहाँ आश्चर्य और मनोरंजक बात यह है कि 'क्षीर' बेचारा 'खीर' बना तो अन्य चीज़ों के साथ उसमें 'क्षीर' (दूध) भी था, पर 'बखीर' में तो 'क्षीर' (दूध) की एक बूँद भी नहीं पड़ती। यह केवल चीनी पानी और चावल से पकाई जाती है। इसे एक प्रकार का मीठा गीला भात समझिए। बेचारे 'क्षीर' की इस विचित्र गति पर आश्चर्य के साथ दुःख भी होता है कि उसे अपना नाम एक ऐसी वस्तु के लिए देना पड़ा जिससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं, जिसमें उसका अस्तित्व लेश-मात्र भी नहीं।

उर्दू का एक शब्द 'बुत' है, जिसका अर्थ मूर्ति होता है। आज-कल यह हिन्दी में भी प्रयुक्त होने लगा है। लोग 'क्या मूर्तिवत् बैठे हो' के स्थान पर 'क्या बुत की तरह बैठे हो' कहना अधिक पसन्द करते हैं। 'धर्मयुग' के १९५१ के 'दीपावली-अंक' में 'शब्दों के भीतरी-रहस्य' शीर्षक लेख में डॉक्टर हेमचन्द्र जोशी ने 'बुत' को अरबी का शब्द माना है। पर, जहाँ तक मैं समझता हूँ यह शब्द अरबी का न

होकर फ़ारसी का है। फ़ारसी के अधिकारी कोषकार स्टेंगस तथा हिन्दुस्तानी के कोषकार शेक्सपीयर आदि ने भी इसे फ़ारसी ही माना है। बुद्ध-धर्म जब फारस में पहुँचा और वहाँ बुखारा आदि के विहारों में बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं तो चूँकि वे ही पहली मूर्तियाँ थीं जो उनके सामने आई थीं, अतः वे लोग मूर्ति को ही 'बुद्ध' या 'बुत' कहने लगे। इस प्रकार मूर्ति के लिए 'बुत' शब्द चला। यहाँ से यह शब्द अरब में भी गया। यद्यपि उनके यहाँ '*सनम*' तथा '*वसन*' आदि मूर्ति के लिए कई शब्द पुराने उनके अपने हैं। कुछ भी हो इतना तो निश्चित है और सभी विद्वान् इसे मानते हैं कि '*बुत*' शब्द 'बुद्ध' का ही रूपान्तर है।

संस्कृत में '*वाटिका*' का अर्थ 'बाग' या 'बगीचा' होता है। भोजपुरी तथा अवधी आदि बोलियों में यह '*बारी*' हो गया है जिसका अर्थ '*बाग*' ही है। बँगला में यह शब्द '*बाड़*' या '*बाड़ी*' हो गया है, जिसका अर्थ घर होता है। कहाँ तो 'बाग' और कहाँ 'घर'!

संस्कृत में '*नील*' शब्द नीला का अर्थ रखता है। हिन्दी में यही विकसित होकर '*नीला*' हो गया है। गुजराती में '*नील*' शब्द '*लील*' हो गया है और इसका अर्थ '*हरा*' होता है। किन परिस्थितियों में यह '*लील*' शब्द 'नीला' से 'हरा' अर्थ रखने लगा, यह नहीं कहा जा सकता।

उर्दू का एक शब्द '*जशन*' है। इसका अर्थ आनन्द, उत्सव या जलसा आदि होता है। मूलतः यह शब्द फारसी का है और वहाँ पुरानी फ़ारसी में इसका रूप '*यश्न*' है। भारतीय आर्य और ईरानी एक ही परिवार के थे और दोनों ही '*यज्ञ*' करते थे। यह '*यज्ञ*' शब्द ही भारतीयों में तो '*यज्ञ*' था और ईरानियों में '*यश्न*' हो गया। इस प्रकार '*जश्न*' (पुरानी फ़ारसी तथा अवेस्त '*यश्न*') और भारतीय '*यज्ञ*' शब्द मूलतः एक ही हैं। दुःख है कि '*यज्ञ*' की पवित्रता का '*जश्न*' में नाम भी नहीं है, बल्कि अब तो '*जश्न*' शब्द कुछ अवनति

की ओर बढ़ने लगा है और शायद कुछ दिनों में यह कुरुचिपूर्ण या अश्लील मनोरंजनों के लिए भी प्रयुक्त होने लगे।

'पत्र' का वास्तविक अर्थ 'पत्ता' है। चूँकि पहले पत्ते पर लिखते थे, अतः 'पत्र' शब्द का प्रयोग छिलका (भोजपत्र) तथा काग़ज़ आदि के लिए होने लगा। उस पर चिट्ठी लिखने से चिट्ठी का भी नाम 'पत्र' पड़ गया। इधर अखबार भी 'पत्र' कहलाने लगे। 'पत्र' शब्द कुछ फैलकर 'पत्तर' (सोने का पत्तर, हो गया। इतना ही नहीं 'पत्तर' पतला होता है अतः 'पत्तर' से 'पतला' हो गया। इस प्रकार एक ही 'पत्र' शब्द पत्ता, छिलका, काग़ज, पत्र, पत्तर, पतला आदि कितने रूप धारण कर चुका है। जब हम कहते हैं कि यह 'पत्तर' 'पतला' है तो क्या हम समझते हैं कि एक ही शब्द को हम दो बार कह रहे हैं।

संस्कृत का 'भद्र' शब्द लीजिए। 'भद्र' का अर्थ भला होता है। कहते हैं ये भद्र पुरुष हैं। हिन्दी में 'भद्र' का विकास कई रूपों में हुआ है। इससे विकसित या निकला हुआ पहला शब्द तो 'भला' है, जो ठीक इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। दूसरा शब्द 'भद्दा' है, जिसका अर्थ बुरा या कुरूप आदि होता है। 'भद्र' से ही निकला तीसरा शब्द 'भोंदू' है, जिसका अर्थ मूर्ख होता है। 'भद्र' से निकला एक चौथा शब्द 'भद्रा' भी है। यह तो संस्कृत में भी प्रयुक्त मिलता है। 'भद्रा' का अर्थ 'बाधा' या कुयोग होता है। ज्योतिष में यह एक पारिभाषिक शब्द भी है। इस 'भद्रा' से ही 'भदराह' बनता है, जिसका अर्थ बुरे शकुन वाला होता है। 'तुम तो बड़े भदराह हो, प्रयोग चलता है।

सामान्य भाषा का एक शब्द है 'बुलबुली'। 'बुलबुली' ललाट के पास के बड़े-बड़े बालों को कहते हैं। देहात में इसे 'जुल्फी' भी कहते हैं। 'बुलबुली' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से बड़ा ही मनोरंजक है। जिन लोगों ने बुलबुल पक्षी को देखा है वे जानते हैं कि उसके सिर पर आगे की ओर एक उठी हुई चीज़ होती है। आदमियों की बुलबुली

भी उसीसे मिलती-जुलती होती है, अतः उसीके आधार पर इसे '*बुलबुली*' की संज्ञा दे दी गई है।

'*पगड़ी*' सिर पर बाँधे जाने वाले वस्त्र या साफे को कहते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द भी बड़ा मनोरंजक है। यों देखने पर यह बड़ा बेतुका-सा लगता है कि 'पगड़ी' रहती तो है सिर पर और नाम है पैर (पग) वाला या जिसे पैर से बाँधते हैं। बात यह है कि आरम्भ में '*पगड़ी*' पैर के घुटनों पर बाँधी जाती थी और वहाँ बाँधने के बाद उसे उठाकर लोग सिर पर रखते थे। देहातों में कहीं-कहीं अब भी यह परम्परा है। इसे पैर पर बाँधने के कारण ही इसे '*पगड़ी*' कहा गया।

'*खटराग*' का अर्थ है 'झंझट'। कहते हैं—'इतने *खटराग* का काम मुझसे नहीं होने का'। '*खटराग*' शब्द सीधे '*षट्राग*' से आया है। पक्के गानों के छः रागों को सीखना कितनी बड़ी फ़ज़ीहत है और कितना दिक्कत-तलब है, यह उन्हें सीखने वाले ही जानते हैं। शायद किसी व्यक्ति ने सीखते-सीखते न आने के कारण परेशान होकर '*खटराग*' का झंझट के अर्थ में प्रयोग किया होगा और लोगों ने ठीक देखकर इसे प्रयोग में लाना शुरू कर दिया होगा। कला और मनोरंजन के केन्द्र शब्द '*षट्राग*' की यह दुर्दशा ही है कि उसे झंझट का समीपवर्ती बनना पड़ा है।

'*मकोय*' अपना पुराना और प्रचलित शब्द है, पर इसके स्थान पर आजकल एक शब्द '*रसभरी*' चला है। विशेषतः शहरों में तो बहुत से लोग '*मकोय*' को '*रसभरी*' ही कहते हैं। '*रसभरी*' के रसयुक्त शरीर की ओर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि मकोय के रस से भरी होने के कारण इसे '*रसभरी*' की संज्ञा दी गई है। पर, यथार्थ बात यह नहीं है। अंग्रेजी में मकोय को '*रेस्पबेरी*' (Rasp Berry) कहते हैं। और रसभरी शब्द इस अंग्रेजी शब्द रैस्पबेरी का ही बिगड़ा रूप है। यह ठीक उसी प्रकार हुआ है जैसे '*लायब्रेरी*' से

मिलते-जुलते नाम *'रायबरेली'* से परिचित होने के कारण लोगों ने 'लायब्रेरी' का नाम सुना तो उसे भी *'रायबरेली'* कहने लगे। देहातों में पुस्तकालय के लिए *'पुस्तकालय'* *'कुतुबखाना'* या *'लायब्रेरी'* की अपेक्षा *'रायबरेली'* शब्द ही अधिक प्रचलित है। शब्दों में इस प्रकार के ध्वनि-परिवर्तनों में भ्रामक व्युत्पत्ति (Popular Etymology) कार्य करती है। अरबी शब्द *'इंतिकाल'* को भी इसी भ्रामक व्युत्पत्ति के फंदे में पड़कर सामान्य भाषा में *'अंतकाल'* बनना पड़ा है।

'पंचानन' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुछ संदिग्ध-सा है। 'पंचानन' का अर्थ 'सिंह' होता है। *पंचानन* शब्द के अर्थ हैं 'पाँच मुख वाला'। अब प्रश्न यह उठता है कि 'सिंह' के पाँच मुँह तो होते नहीं, फिर 'सिंह' का पंचानन नाम पड़ा तो कैसे ? मुझे ऐसा लगता है कि मुँह से 'सिंह' किसी को भी फाड़ सकता है और प्रायः वही काम अपने चारों पंजों से भी कर सकता है। इस प्रकार चार पंजे और एक मुँह मिलकर उसके 'पाँच आनन' या 'मुँह' हो गए।

'किकुरी' बैठने या सोने के एक विशेष ढंग को कहते हैं। इसमें हाथ-पैर सिकोड़कर बैठा या सोया जाता है। जाड़े से बचने के लिए ग़रीब लोग कपड़े की कमी में इसी शैली का सहारा लेते हैं। यह *'किकुरी'* या *'किकुरी'* शब्द *केकड़ा* से निकला है। 'केकड़ा' भी इसी भाँति हाथ-पैर सिकोड़कर बैठता है।

अंग्रेजी शब्द *'फी'* या *'फीस'* अब हिन्दी का भी अपना शब्द हो गया है। मूलतः *'फीस'* और संस्कृत *'पशु'* शब्द एक ही हैं। पहले क्रय-विक्रय आदि अदला-बदली या 'बार्टर' से होता था। बाद में पशु ही इसके माध्यम बने। इस प्रकार आज जो काम 'रुपया' करता है तब पशुओं से होता था। इसी परम्परा में *'पशु'* के ही एक रूप *'फी'* या *'फीस'* का अर्थ पश्चिम में रुपये से सम्बन्धित हो गया। आज भारत में 'पशु' पशु-का-पशु ही रह गया और पश्चिम में वह 'फी' बनकर कहाँ-का-कहाँ पहुँच गया।

'वर्षा' का अर्थ 'बारिश' या 'पानी' होता है तथा 'वर्ष' का अर्थ 'साल' होता है। हमारा ध्यान प्रायः नहीं जाता कि 'बारिशवाची' और 'सालवाची' दोनों शब्द 'वर्षा' तथा 'वर्ष' प्रायः एक-जैसे क्यों हैं। बात यह है कि आरम्भ में 'महीनों' आदि का निर्माण तो हुआ नहीं था अतः 'साल' या 'वर्ष' का ज्ञान लोगों को पानी बरसने से होता था। बरसात का मौसम आने पर लोग समझते थे कि पिछली बरसात से एक वर्ष हो गया। इसी प्रकार 'वर्षा' पर ही 'वर्ष' का ज्ञान आधारित था, अतः 'वर्षा' के आधार पर ही 'साल' का नाम 'वर्ष' पड़ा। 'वर्ष' की भाँति ही साल के लिए हमारा दूसरा शब्द 'अब्द' है। इसीसे सौ वर्ष को हम 'शताब्दी' कहते हैं। इस 'अब्द' शब्द का भी सम्बन्ध वर्षा से ही है। इसका मूल अर्थ 'अप्' अर्थात् पानी का 'द' अर्थात् देने वाला और इस प्रकार 'बादल' है। आर्यों और ईरानियों में इस प्रकार के कुछ और भी मनोरंजक शब्द मिलते हैं। 'शरद' अपने यहाँ वर्ष का अर्थ रखता है। 'जीवेम शरदः शतम्' प्रसिद्ध है। कहना न होगा कि 'शरद' ऋतु आने पर भी वर्ष का ज्ञान होने के कारण ही 'शरद' का अर्थ वर्ष हो गया है। इसी प्रकार हेमन्त ऋतु से सम्बन्धित नाम 'हिम' भी वर्ष के अर्थ में वेदों में प्रयुक्त हुआ है—'शतं हिमाः'। इसी आधार पर आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' में प्रकाशित अपने 'संस्कृत का वैज्ञानिक अनुशीलन' शीर्षक लेख में यह अनुमान लगाया है कि अपने यहाँ 'ग्रीष्म' का भी कोई पर्याय 'वर्ष' का वाचक अवश्य रहा होगा। वे लिखते हैं, 'यह हो नहीं सकता कि ग्रीष्म-प्रधान भारत के आर्य अपनी प्रधान ऋतु को ही भूल जायँ।' आगे आपने यह भी बतलाया है कि उन्हें 'अवेस्ता' में 'हम' शब्द मिला, जो वहाँ ग्रीष्म का पर्याय है। कहना न होगा कि यह 'हम' संस्कृत का 'समाः' है, जिसका अर्थ 'वर्ष' या साल होता है। 'जिजीविषेच्छतं समाः'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द और उनका संसार दोनों ही मनोरंजन से भरे पड़े हैं।

६ : : शब्द चलते हैं

शब्दों के चलने का एक अर्थ यह भी होता है कि वे प्रचलित होते हैं। कहा जाता है—अमुक शब्द अब नहीं चलता। पर, प्रस्तुत लेख में शब्दों के चलने का अर्थ है 'यात्रा करना' या एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना। शब्दों की यात्रा या उनका चलना मनुष्यों के चलने या यात्रा करने से भिन्न होता है। मनुष्य यदि एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान पर जाता है तो पहले स्थान पर उसे हम नहीं देख सकते। पर शब्द एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और इसी प्रकार और भी कई स्थानों पर जा सकते हैं और वे हर स्थान पर देखे जा सकते हैं। अंग्रेज़ी के बहुत से शब्द भारत की भाषाओं में भी प्रचलित हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि यदि वे वहाँ से चलकर आए और यहाँ उपनिवेश बनाकर बस गए तो इंग्लैंड से उनका अस्तित्व ही मिट गया। इस दृष्टि से ब्रह्म की बराबरी करते हुए शब्द सर्वव्यापक हो सकते हैं।

शब्दों के चलने या यात्रा की दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन बड़ा मनोरंजक होता है। दुःख है कि इस दृष्टिकोण से हिन्दी में अभी तक तनिक भी अध्ययन नहीं हुआ है। जर्मन भाषा के विद्वानों ने पता लगाया है कि लगभग १०,००० विदेशी शब्द उनकी भाषा में चल रहे हैं। ये शब्द विभिन्न भाषाओं से चलकर जर्मन में आ गए हैं।

इन पंक्तियों का लेखक कुछ दिनों से शब्दों के दृष्टिकोण से हिन्दी

का अध्ययन करता रहा है। यहाँ प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित निष्कर्ष देखे जा सकते हैं।

हिन्दी में बहुत सी भाषाओं के शब्द मिलते हैं। लगता है हिन्दी-प्रदेश शब्दों के लिए तीर्थ-स्थल रहा है और वे चारों ओर से यहाँ आते रहे हैं।

सबसे पहले यूरोपीय देशों को लीजिए। इंग्लैंड से इधर हमारे देश का काफी सम्पर्क रहा है और बहुत से लोग भारत से इंग्लैंड तथा इंग्लैंड से भारत आते-जाते रहे हैं। आदमियों को आते-जाते देखकर शब्दों को भी शौक़ लगा और यों तो बहुत-से शब्द इंग्लैंड से यहाँ आए पर कुछ तो यात्रा करके लौट गए और कुछ यहाँ उपनिवेश बनाकर बस गए। आज हिन्दी के कोषों में भी इन्हें स्थान प्राप्त है। इस समय इस प्रकार के अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या लगभग १४०० है।[1] इसी प्रसंग में एक बड़ी विचित्र बात का पता लगा है। हिन्दी में प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या जहाँ १४०० के लगभग है, अंग्रेज़ी में हिन्दी-शब्दों की संख्या प्रायः २३०० है। अर्थात् हिन्दी से प्रायः १००० अधिक। लगता है कि हिन्दी के शब्दों को अंग्रेज़ी शब्दों की अपेक्षा यात्रा करने का शौक अधिक है। ध्यान देने की बात यह है कि अंग्रेज़ी तो हमारी राज-भाषा थी और हमारे ऊपर लादी गई थी, इस कारण हमें शब्दों को लेने के लिए प्रायः बाध्य होना पड़ा। पर, दूसरी ओर अंग्रेज़ों के साथ यह बात नहीं थी। वे चाहते तो शायद एक भी शब्द उनकी भाषा में हिन्दी का न जा पाता। पर उन्होंने हमारी अपेक्षा हमारे १००० शब्द अधिक लिये हैं। यह उनकी उदारता है। आवश्यकता-नुसार वे कहीं से भी कुछ ग्रहण करने को प्रस्तुत रहते हैं। आज अत्यन्त प्रचलित अंग्रेज़ी शब्दों के पीछे डंडा लेकर पड़ने वाले शास्त्री

१. मैंने यह गणना 'हिन्दी-शब्द-सागर' से की है, जो आज से प्रायः दो दशक पूर्व प्रकाशित हुआ था। आज इनकी संख्या अवश्य ही कुछ बढ़ी होगी, शायद सत्रह सौ के आस-पास हो।

लोग क्या इस बात की ओर ध्यान देंगे ?

पुर्तगालियों का भारत से तो सम्बन्ध रहा है, पर हिन्दी-प्रदेश कभी उनके सीधे सम्पर्क में नहीं आया। फिर भी उनके काफ़ी शब्द हिन्दी में आए ही नहीं वरन् घर कर गए हैं। 'घर कर गए हैं', मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हिन्दी में वे इस प्रकार मिल गए हैं कि साधारणतः उनका पहचानना असम्भव-सा है। गोभी, मिस्त्री, नीलाम, आलमारी तथा काज आदि हिन्दी के अत्यन्त आमफ़हम शब्दों को भला कौन यूरोप से आने वाले शब्द मानेगा, पर तथ्य यह है कि ये शब्द पुर्तगाली हैं। इन शब्दों के हिन्दी शब्दों में मिल जाने के कारण ही इनकी संख्या का अभी तक निर्धारण नहीं हो सका है। हमारी गणना के अनुसार 'हिन्दी-शब्द-सागर' में केवल २३ शब्दों को पुर्तगाली माना गया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में पुर्तगाली शब्दों की एक लम्बी सूची दी है। उस सूची के अनुसार हिन्दी में पुर्तगाली शब्द ४० हैं। इधर लेखक ने स्वतन्त्र रूप से इस दिशा में कुछ कार्य शुरू किया है। अभी तक कार्य समाप्त न होने के कारण निश्चित संख्या देना तो सम्भव नहीं, पर अनुमानतः ८० पुर्तगाली शब्द हिन्दी में आ गए हैं।

यूरोप के अन्य देशों से भी हिन्दी में शब्द आए हैं। फ्रेंच भाषा से आए शब्द सात, डच शब्द दो, इटैलियन एक, तथा जर्मन तीन हैं। संस्कृत के माध्यम से हिन्दी में लगभग ३० ग्रीक शब्द भी आ गए हैं।

यूरोप के अतिरिक्त पश्चिमी एशिया से भी हिन्दी में शब्द आए हैं। इनकी भी गणना 'हिन्दी-शब्द-सागर' के अनुसार की गई है। उस आधार पर हिन्दी में फ़ारसी शब्द लगभग ३४००, अरबी लगभग २४०० तथा तुर्की ७० हैं। हिन्दी में कुछ शब्द मंगोलिया, चीन तथा बर्मा से भी आए हैं, पर अभी तक इधर कुछ कार्य किसी ने नहीं किया है, अतः संख्या नहीं दी जा सकती।

ऊपर हम लोग देख चुके हैं कि अंग्रेजी में हिन्दी-शब्दों की संख्या लगभग २२०० है। इसी प्रकार फ़ारसी भाषा में हिन्दी-शब्द १५० के लगभग हैं।[1] अरबी में भी कुछ हिन्दी या संस्कृत के शब्द हैं, जिनकी अभी तक गणना शायद प्रकाश में नहीं आई है। बाइबिल की पुरानी पोथी (Old Testament) में (जो हिब्रू में है) ११ संस्कृत शब्द मिले हैं।[2]

बंगला के शब्द-समूह के विषय में इस प्रकार के आँकड़े बहुत पहले सामने आ चुके हैं। ज्ञानेन्द्र मोहन दास के बँगला-कोष को प्रामाणिक मानते हुए डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Origin and Development of Bengali language में लिखा है कि बँगला में अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द लगभग २४००, अंग्रेज़ी शब्द ७०० तथा पुर्तगाली शब्द १०० हैं।

किसी भी भाषा के शब्द-समूह का विभिन्न भाषाओं से आए शब्दों के दृष्टिकोण से अध्ययन मनोरंजक होने के साथ-साथ और दृष्टियों से भी बड़ा फलप्रद है। इससे विभिन्न देशों से अपने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। हिन्दी में इस दृष्टि के वैज्ञानिक अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है।

यहाँ यात्रा करने वाले या चलने वाले कुछ मनोरंजक शब्दों को देखा जा सकता है। आज का प्रसिद्ध '*गंगा*' (गंगा नदी का नाम) शब्द हिन्दी में संस्कृत से आया माना जाता है। पाणिनि के सूत्रों के आधार पर साधकर इसे शुद्ध संस्कृत शब्द कहा भी जा सकता है। पर यथार्थतः यह शब्द चीनी-परिवार का है और इसका अर्थ पानी है। उधर की यांगट्सीक्यांग, मीक्यांग तथा सीक्यांग आदि नदियों के

---

१. यह गणना मैंने स्टैंगस की (Persian English Dictionary) के आधार पर की है।

२. देखिए, लेखक का 'सम्मेलन-पत्रिका' भाग ३८, संख्या १ में 'बाइबिल में संस्कृत शब्द' शीर्षक लेख।

नामों में '*क्यांग*' शब्द यही '*गांग*' या '*गंगा*' है। भारत में भी यह '*गंगा*' पहले पानी का ही वाचक था। मराठी में तो अब भी '*गंगा*' का अर्थ पानी होता है। यहाँ गंगा के अतिरिक्त 'राम गंगा' 'पाताल गंगा' आदि नाम भी उस पुरानी बात की पुष्टि करते हैं। भारत में प्राचीनतम जाति उधर से ही आई थी, अतः यह शब्द उनके साथ यहाँ चला आया था।

इसी प्रकार का एक दूसरा शब्द 'मल' है। संस्कृत में 'मल' का अर्थ मैल होता है, पर आस्ट्रेलिया की ओर की भाषाओं में यह शब्द 'फूल' का अर्थ रखता है। 'गंगा' की भाँति यह शब्द भी बहुत पहले वहाँ से आने वाली जातियों के साथ भारत में आ गया और फूल से सम्बन्धित बहुत से संस्कृत शब्दों का अंश बन गया। उदाहरण के लिए '*कमल*', '*चमेली*', '*मौलश्री*', '*कुड्मल*' तथा '*परिमल*' आदि शब्द देखे जा सकते हैं।

कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनकी मात्राएँ अपेक्षाकृत अधिक लम्बी होती हैं। 'वज़न' के अर्थ का '*मन*' (४० सेर) शब्द इसी प्रकार का है। इसके मूल स्थान के विषय में काफ़ी मतभेद है, पर यों यह शब्द अरबी, हिब्रू, ग्रीक, लैटिन तथा संस्कृत आदि एकाधिक परिवार की भाषाओं में पाया जाता है।[1] इस प्रकार इस शब्द की यात्रा प्रायः विश्व-व्यापी है।

कभी-कभी शब्द यात्रा करते-करते या चलते-चलते घिस-घिसकर इतने वृद्ध या परिवर्तित हो जाते हैं कि पहचान में ही नहीं आते। यहाँ कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

'बुद्ध' भगवान् बुद्ध का नाम है। यह शब्द बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ-साथ अफ़गानिस्तान होता हुआ फ़ारस पहुँचा और वहाँ से '*बुत*' (मूर्ति) बनकर अरब गया। अब यह '*बुत*' बनकर ही भारत में आ

१ देखिए, लेखक के 'सम्मेलन-पत्रिका' भाग ३८, संख्या १ में 'हिन्दी शब्द-सागर की व्युत्पत्ति-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' शीर्षक लेखक।

गया है, पर हम अपने पुराने शब्द को पहचानते नहीं। हम 'बुद्ध' की मूर्ति देखकर कहते हैं, 'यह बुद्ध का बुत है।' हमें क्या मालूम कि हम एक ही शब्द का पिष्टपेषण कर रहे हैं।

बौद्ध मठों को *'विहार'* कहते हैं। इन मठों की अधिकता से ही भारत के एक प्रान्त का नाम 'बिहार' है। बौद्ध-धर्म धीरे-धीरे पश्चिमी एशिया में फैला तो वहाँ भी कुछ स्थानों पर विहार बने। यात्रा में घिसकर यह 'विहार' शब्द वहाँ 'बहार', 'बखार', 'बुखार' या *'बुखारा'* बन गया। आज भी वहाँ एक *'बुखारा'* नाम का शहर है जहाँ बौद्ध विहारों के बहुत से भग्नावशेष हैं। ये भग्नावशेष आज भी चिल्ला रहे हैं कि यह *'बुखारा'* *'विहार'* का ही विकसित या विकृत रूप है।

आज का हिन्दी का विद्यार्थी जब अंग्रेज़ी पढ़ना प्रारम्भ करता है तो उसे रटाया जाता है सी—ओ—टी *'कॉट'* (Cot)—'कॉट' माने 'चारपाई'। उसे शायद नहीं पता है कि उसकी हिन्दी का ही अत्यन्त प्रचलित शब्द *'खाट'* यात्रा करता-करता इंग्लैंड पहुँचा और वहाँ घिस-घिसाकर *'कॉट'* बनकर अंग्रेज़ी भाषा में घर कर गया और इस प्रकार आज वह अपने ही *'खाट'* शब्द को *'कॉट'* बनाकर रट रहा है। यह कुछ वैसी ही बात है जैसे कस्तूरी मृग उस कस्तूरी की सुगन्धि के लिए, जो उसकी अपनी है (उसीके शरीर में है), इधर-उधर दौड़ता फिरता है।

'ज़ेनाना' शब्द भी अंग्रेज़ी में इसी प्रकार का है। वह असल में हमारा *'जनाना'* शब्द है और वहाँ जाकर *'ज़ेनाना'* हो गया। इस शब्द के रूप में तो अधिक परिवर्तन नहीं आया है पर इसका अर्थ बहुत बदल गया है। यहाँ *'जनाना'* का अर्थ होता है 'स्त्री' या 'स्त्री' से सम्बन्धित, पर अंग्रेज़ी में *'ज़ेनाना'* ज़नानखाने को कहते हैं।

अंग्रेज़ी में *'बेंगल'* (Bangle) हाथ के कड़े को कहते हैं। यह यथार्थतः भारतीय शब्द *'बँगुरी'* है। आज भी देहात में 'ककनी' (कंकण) के साथ पुरानी स्त्रियाँ *'बँगुरी'* पहनती हैं, विशेषतः भोज-

पुरी क्षेत्र का तो यह प्रधान आभूषण है।

'*हिन्दुस्तान*' तथा '*इंडिया*' शब्दों को लीजिए। मूलतः शब्द 'सिन्धु' था। यहाँ से यह शब्द चलता हुआ ईरान में पहुँचकर 'स' के 'ह' होने से (जैसे 'सप्त' से 'हफ़्त' तथा 'सप्ताह' से 'हफ़्ता' आदि) 'हिन्दु' हो गया। 'हिन्दु' शब्द ईरान से यूनान पहुँचा और घिसकर 'हिन्दु' से 'इंदु' या 'इंडु' बना, जिससे '*इंडस*', '*इंडिका*' तथा '*इंडिया*' बने। इन यात्राओं के बाद '*हिन्दुस्तान*' तथा '*इंडिया*' आदि बनकर यह अपना सिन्धु शब्द अपने घर आया तो हमने इसका स्वागत किया और साथ ही अपने देश के नाम के रूप में स्वीकार करके इसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा की। यह शब्द यात्रा न करता तो शायद इस महान् देश का नाम बनने का सौभाग्य इसे नहीं प्राप्त होता। '*हिन्दी*' और '*हिन्दू*' शब्द भी इस 'हिन्दु' से ही सम्बोधित हैं। यही 'हिन्दु' या 'हिन्द' शब्द भारत आने के बाद अरब पहुँचा और वहाँ '*हिंदसा*' बनकर '*संख्या*' का वाचक हो गया है। इसी आधार पर कुछ लोगों का विचार है कि अरबों ने गणित-शास्त्र भारत से ही सीखा है।

इस प्रकार शब्द चलते या यात्रा करते हैं और उनकी यात्राओं का अध्ययन मनोरंजन तथा ज्ञान आदि अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्त्व-पूर्ण है।

७ : : शब्द मोटे होते हैं

मोटे होने का अर्थ है 'फैलना', 'विस्तार पाना' या 'पहले की अपेक्षा अधिक स्थान घेरना'। अर्थ की दृष्टि से शब्दों में भी कभी-कभी इस प्रकार का विस्तार, फैलाव या मोटापन आ जाता है, जिसे 'शब्दों का मोटा होना' कहना अनुचित न होगा। भाषा-विज्ञान की शास्त्रीय भाषा में शब्दों की इस प्रवृत्ति को 'अर्थ-विस्तार' कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे (Expansion of Meaning) कहते हैं।

'*तेल*' शब्द से हम सभी परिचित हैं। यदि इस शब्द के शरीर पर ध्यान दें तो यह जानने में देर नहीं लगेगी कि इसका सम्बन्ध 'तिल' शब्द से है। 'तिल' से निकले रस को ही मूलतः '*तेल*' कहते हैं। यह तेल शब्द धीरे-धीरे मोटा होने लगा और आज इतना मोटा हो गया है कि सरसों, अलसी, दाना, ज़ैतून, मूँगफली, कोइना और बिनौले को कौन कहे मिट्टी के तेल को भी '*तेल*' कहते हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न प्रकार के फूलों और वनस्पतियों के '*तेल*', धनेस आदि चिड़ियों का *तेल*, साँप-बिच्छू आदि कीड़ों का '*तेल*', सूअर आदि जानवरों का '*तेल*',और यहाँ तक कि आदमी का '*तेल*'! यदि किसी को धूप में खूब दौड़ा दें तो वह अवश्य कहेगा—आज तो आपने मेरा '*तेल*' ही निकाल लिया। कहना न होगा कि एक तिल के रस से फैल-कर अनन्त प्रकार के रसों या तेलों को अभिहित करने वाले इस '*तेल*' शब्द की मोटाई शब्द-जगत् में अद्वितीय है। शायद दो-चार-दस

भूधराकार शरीर कुम्भकरण भी इसकी बराबरी न कर सकें !

'सब्ज़' फ़ारसी का एक शब्द है जिसका अर्थ 'हरा' होता है। 'सरसब्ज़ बाग़' के प्रयोग में वह अर्थ स्पष्ट है। इस 'सब्ज़' से ही 'सब्जी' शब्द बना है। पहले पालक, बथुवा, चौलाई आदि हरे सागों के लिए 'सब्जी' का प्रयोग होता था जो उचित भी था, पर अब तो 'सब्जी' शब्द तरकारी-मात्र का पर्याय हो गया है। "चौके में आज क्या 'सब्जी' बनी है ?" का अर्थ यह न होकर कि 'चौके में आज क्या साग बना है ?' यह होता है कि 'चौके में आज क्या तरकारी बनी है ?' इस प्रकार अब 'सब्जी' शब्द में हरे सागों के अतिरिक्त, पीले रंग का कोंहड़ा, अंगूरी रंग की लौकी या टिंडे, भूरे रंग का आलू, लाल रंग का टमाटर और सफ़ेद रंग की मूली आदि सभी-कुछ आ गया है। ऐसा लगता है कि इस हरे रंग के नाम के भीतर विभिन्न रंगों की नुमायश लग गई है। शायद यह शब्द इतना उदार है कि इसमें अपने-पराए रंगों का भेद-भाव भी नहीं है। इस शब्द का भी मोटापन या फैलाव कम सराहनीय नहीं है।

'अभ्यास' शब्द भी मोटे होने का सुन्दर उदाहरण है। मूलतः इस शब्द का प्रयोग केवल बाण फेंकने के अभ्यास के लिए ही होता था। हलायुध ने अपनी 'अभिधान रत्नमाला' में लिखा है :

बाणमुक्तिर्व्यवच्छेदो दीप्तिर्वेगस्य तीव्रता।
अभ्यासः कथ्यते योग्या श्रमस्थानं खलूरिका।

पर अब तो क्रूर-कोमल, अच्छे-बुरे सभी कार्यों के 'अभ्यास' को 'अभ्यास' कहते हैं। कोई विद्या का अभ्यास करता है तो कोई 'रोमांस' का। कोई खेल-कूद का अभ्यास करता है तो कोई योग-साधना का। ब्लेड से पाकेट काटने के अभ्यास की तो कोई बात ही नहीं, वह तो 'बाण' के अभ्यास के बिलकुल निकट है।

'निपुण' शब्द भी इसी श्रेणी का है। पुण्य कार्य करने वाला या पुण्य कार्य में दक्ष व्यक्ति पहले 'निपुण' कहा जाता था। स्वयं 'निपुण'

शब्द का 'पुरण' अंश भी इस ओर आंशिक संकेत करता है। अब तो आप किसी भी काम में '*निपुण*' हो सकते हैं—चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण से लेकर कविता करने और चित्र बनाने तक में। 'पुण्य-कार्य' से '*निपुण*' का अब कोई सम्बन्ध नहीं। स्याह को सफ़ेद और सफ़ेद को स्याह सिद्ध करके सरासर झूठ बोलने वाला पुण्य से कोसों ही नहीं योजनों दूर वकील भी '*निपुण*' कहा जाता है।

'*गवेषणा*' शब्द का प्रयोग पहले खोई हुई गायों को खोजने के लिए होता था, पर अब तो आप किसी भी चीज़ की गम्भीर खोज को गवेषणा कह सकते हैं। आज तो एम० ए० करने के बाद बहुत से लोग किसी विषय को लेकर गवेषणा (Research) करते हैं। यदि अत्यन्त प्राचीन काल का कोई व्यक्ति स्वर्ग या नरक से बुलाया जाय और उसके सामने किसी रिसर्च स्कॉलर के विषय में कहा जाय कि आपने एक गवेषणात्मक लेख लिखा है तो वह बेचारा समझेगा कि महोदय ने कोई लेख लिखा है जिसमें खोई हुई गायों के खोजने के तरीकों पर प्रकाश डाला गया है। इस तरह '*गवेषणा*' शब्द भी पहले की अपेक्षा मोटा हो गया है।

हिन्दी का '*कल*' शब्द संस्कृत-शब्द '*कल्प*' के पुत्र का पुत्र अर्थात् पोता है। इस संस्कृत शब्द का अर्थ 'प्रातःकाल' था। 'अमर कोष' में आता है—

प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषः प्रत्युष सी (अपि)

बाद में प्राकृत काल में '*कल्प*' का पुत्र '*कल्ल*' पैदा हुआ, जिसका अर्थ 'आने वाला कल' हुआ। '*कल्ल*' का पुत्र हिन्दी का '*कल*' हुआ तो इसका अर्थ आने वाला और बीता हुआ दोनों ही कल हैं।

फ़ारसी शब्द 'सियाह' का अर्थ काला होता है। इसी कारण श्याम पट या (Black board) को 'तख्तसियाह' या 'तख्तास्या' कहते हैं। इसी 'सियाह' से '*स्याही*' बना है। पहले केवल काली रोशनाई से लिखा जाता था, अतः 'रोशनाई' को '*स्याही*' कहा जाता था, जो

सर्वथा उचित था। पर अब तो लाल, नीली, नीली-काली तथा हरी आदि सभी रंग की रोशनाइयों को '*स्याही*' कहते हैं। '*सब्ज़ी*' की भाँति ही यह शब्द भी मोटा हो गया है और सभी रंगों का अपने में स्वागत कर रहा है।

संस्कृत का '*परश्वस्*' शब्द आने वाला '*परसों*' के लिए प्रयुक्त होता था। उसीसे निकला हिन्दी का '*परसों*' शब्द बीते हुए और आने वाले दोनों 'परसों' के लिए प्रयुक्त होता है। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अपनी 'अर्थ-विज्ञान' पुस्तक में लिखा है कि पहाड़ी बोलियों में तो इस शब्द का प्रयोग आने वाला तथा बीते हुए चौथे, पाँचवें तथा छठे आदि दिनों के लिए भी होता है।

'*प्रवीण*' शब्द का मूल अर्थ था 'वीणा बजाने में दक्ष'। '*प्रवीण*' का 'वीणा' अंश भी इस ओर संकेत करता है। पर अब तो '*प्रवीण*' शब्द किसी भी कार्य में दक्ष व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हो सकता है, चाहे उसकी सात पुश्तों ने 'वीणा' का नाम भी न सुना हो।

'*ताड़ी*' आज का एक प्रचलित शब्द है। यों तो उसका प्रयोग मादक होने के कारण वर्जित है पर गांधी जी ने इसके ताज़े रूप को 'नीरा' नाम से सम्बोधित किया है। जैसा कि शब्द से स्पष्ट है 'ताड़' का रस ही '*ताड़ी*' नाम का अधिकारी है, पर अब तो खजूर और नीम के रस को भी ताड़ी कहने लगे हैं।

देहातों में प्रचलित एक शब्द '*गोइँठा*' है। इसे 'गोहरा' 'उपला' या 'चिपरी' भी कहते हैं। '*गोइँठा*' शब्द 'गोविष्ठा' का विकसित रूप है। अतः केवल गाय के गोबर से बने उपले को '*गोइँठा*' कहना उचित है, किन्तु आज तो गाय-बैल के अतिरिक्त भैंस के उपले को भी '*गोइँठा*' ही कहते हैं। '*गोबर*' शब्द भी इसी प्रकार केवल 'गो' अर्थात् गाय से सम्बोधित है, पर अब भैंस के पाखाने को भी '*गोबर*' ही कहते हैं।

यहाँ तक हम सामान्य शब्दों का मोटा होना या उनका अर्थ-विकास देखते रहे थे। दूसरी श्रेणी के शब्दों में जानवरों, पक्षियों तथा

कीड़ों के नाम हैं जो मोटे हो गए हैं। जब हम कहते हैं 'तुम उल्लू हो' तो यहाँ 'उल्लू' का अर्थ 'उल्लू पक्षी' न होकर 'मूर्ख' है। अतः अपने असली स्वरूप के अतिरिक्त मूर्खता का प्रतीक होकर 'उल्लू' शब्द के अर्थ का विस्तार हो गया है। इस प्रकार के बहुत से शब्द सभी भाषाओं में मिलते हैं। हिन्दी के इस प्रकार विस्तार पाए शब्दों की एक सूची उनके विस्तृत अर्थों के साथ यहाँ देखी जा सकती है।

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
उल्लू	मूर्ख	मछली	अशान्त, तड़फड़ाने वाला
गीदड़	डरपोक	स्यार	चालाक, होशियार
भैंस	सुस्त, मूर्ख	गाय, गऊ	सीधा
कुत्ता	गंदा, दुबला, जूठा चाटने वाला	बन्दर	चंचल, नटखट, नकलची
ऊँट	लम्बी गरदन वाला, लम्बा	बैल	मूर्ख
		गदहा	मूर्ख
सर्प, काला नाग	ज़हरीला, गम्भीर पर छिपी चोट करने वाला, काला	सूअर	गंदा, घृणित
		कौवा	काला, चालाक
भालू	बहुत अधिक बाल वाला	बिल्ली	डरपोक
भुचंग	काला	गिरगिट	अवसरवादी, रंग बदलने वाला
बिस्तुइया	पतला, दब्बू		
शेर	वीर, साहसी, हिम्मती	कोयल	मीठी बोली बोलने वाला
गिद्ध	अधिक दूर तक देखने वाला, तेज़ द्रष्टा	तोता	बेमुरव्वत

कुछ जातियों के नामों का भी इसी प्रकार अर्थ-विकास हुआ है। इसके कुछ उदाहरण देखिए :

कुछ जातियों के नामों का भी इसी प्रकार अर्थ-विकास हुआ है।

उदाहरणार्थ—

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
बनिया	धनलोलुप, मूजी, गन्दा	ब्राह्मन	डरपोक, पोंगा, भिखारी
तेली	गन्दे कपड़े वाला	अहीर	मूर्ख, चपाट
राजपुत्र, क्षत्रिय	वीर, रोब वाला	पठान	वीर, रोब वाला
चमार	कंजूस, नीच, क्षुद्र	तुर्क	बेधर्म, भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान न रखने वाला
भूमिहार	चोख, जिसका भेद कोई न पा सके। भीतर से धोखा देने वाला	कोइरी	कमज़ोर, धोखेबाज़
		खत्री	गोरा
मुसहर	काला		

स्त्री-पुरुषों को भी हमने मोटा कर दिया है—

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
मर्द	वीर, हिम्मती	औरत	डरपोक, अबला, धूर्त, जिसका हाल कोई न जाने, नखरेबाज़, कोमल
पुरुष	कठोर		
रंडी	ऊपरी दिखावे वाली, ऊपर से प्रेम करने वाली		
शिशु, लड़का, बच्चा	कम अक्ल, नादान		

कुछ अन्य वस्तुओं के नामों में भी अर्थ-विस्तार मिलता है—

शब्द	विकसित अर्थ	शब्द	विकसित अर्थ
पत्थर	कड़ा	तवा	काला
वज्र	कड़ा	चलनी	जिसमें बहुत छेद हों
पाजामा	मूर्ख	काँटा	दर्द देने वाला, क्रूर

मूलतः ये एक प्रकार के आलंकारिक प्रयोग हैं फिर भी इनके मोटे होने में किसी को सन्देह नहीं।

उपर्युक्त शब्द जातिवाचक संज्ञाएँ थीं। व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ भी

इस मर्ज़ का शिकार मिलती हैं। 'तुम्हारा गाँव लन्दन नहीं है' का अर्थ है तुम्हारा गाँव बहुत बड़ा नगर नहीं है। 'रावण बनोगे तो जल्द विनाश होगा' का अर्थ है अत्याचार करोगे तो शीघ्र ही समाप्त हो जाओगे। कुछ व्यक्तियों एवं नगरों के नाम यहाँ फैले अर्थ के साथ देखे जा सकते हैं—

शब्द	*विकसित अर्थ*	शब्द	*विकसित अर्थ*
गांधी	सत्यवादी, अहिंसक	हरिश्चन्द्र	सत्यवादी, दृढ़
युधिष्ठिर	सत्यवादी	रावण	अत्याचारी
कंस	अत्याचारी	हिटलर	अत्याचारी, तानाशाह
सावित्री	पतिव्रता	जयचन्द	देशद्रोही
विभीषण	देशद्रोही	डिसलिंग	देशद्रोही
वाजिदअलीशाह	विलासी	सिकन्दर	बड़ा, तेजस्वी
लन्दन	बड़ा नगर	पेरिस	विलासी नगर
कश्मीर	सुन्दर स्थान	नैपोलियन	वीर, विजेता
कालिदास, शेक्सपियर	सफल नाटककार	होमर	सफल कवि
		कामदेव	सुन्दर
महादेव	कामदेव को जीतने वाला	रति	सुन्दरी

हमने अपने विभिन्न अंगों के नामों के अर्थ भी विस्तृत कर दिए हैं। जब हम कहते हैं कि कुरसी के पैर टूट गए हैं तो इसका अर्थ आदमी या जानवर के पैरों से भिन्न है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण अपनी भाषा में मिलते हैं। कुछ प्रमुख यहाँ देखे जा सकते हैं।

नारियल या भुट्टे की *जटा*, पेड़ या पर्वत की *चोटी*, चारपाई, संस्था या छड़ी का *सर*, ईख, आलू या अनन्नास की *आँख*, चने की *नाक*, घड़ा, सुई, मकान या गाड़ी का *मुँह*, आरी या मशीन के *दाँत*, कलम को *जीभ*, भग के *ओठ*, घड़े या सुराही की *गरदन*, मशीन, गेहूँ या नदी का *पेट*, कागज, रोटी या मकान की *पीठ*, आँगन या कुएँ का *गर्भ*, कुरसी, प्याला या घड़ी का *हाथ*, दस्ताने की *उँगली*, मेज़, कुरसी या चारपाई का *पैर*, तथा कटोरे का *गोड़ा*, आदि।

पेड़ की *खाल*, पत्ते की *नस*, गाजर की *हड्डी*, फूल का *रज*, टमाटर का *बीज* तथा तसवीर की *आत्मा* में खाल, नस, हड्डी, रज, बीज तथा आत्मा के अर्थ में भी विस्तार हो गया है।

ऊपर के उदाहरणों में प्रथम सूची जानवरों तथा पशु-पक्षियों आदि की है। इन शब्दों का अर्थ-विस्तार उनके जातीय स्वाभाविक गुण ही हैं। दूसरी सूची जातियों की है। वहाँ भी अर्थ-विस्तार जातीय स्वाभाविक गुण की ओर ही है। तीसरी सूची में स्त्री-पुरुष तथा बालक आदि हैं। यहाँ भी अर्थ-विकास उपर्युक्त दो के ही वर्ग का है। चौथी सूची में अर्थ-विस्तार रंग, रूप तथा स्वभाव की ओर उन्मुख है। पाँचवीं सूची में व्यक्ति, नगरों और देशों के नाम हैं। यहाँ विकसित अर्थ व्यक्तियों, नगरों तथा देशों के विषय में प्रसिद्ध गुणावगुणों या बातों की ओर गया है। छठी सूची में रूप के आधार पर अर्थ-विकास हुआ है। इस सूची का अन्तिम विकास कार्य या स्वभाव पर आधारित है।

यहाँ तक हम संज्ञा-शब्दों के अर्थ-विस्तार पर विचार कर रहे थे। क्रियाओं में भी विस्तार होता है। आज के बहुत से मुहावरे इसके उदाहरण हैं। 'यह रुपया *चलता* नहीं है' वाक्य में मनुष्य आदि के लिए प्रयुक्त '*चलना*' शब्द प्रयुक्त किया गया है, पर यहाँ चलने का अर्थ ठीक वही नहीं है, जो मनुष्य या और जीवों के सन्दर्भ में होता है। इस प्रकार यहाँ '*चलना*' शब्द का अर्थ विस्तार पा गया है या अर्थ की दृष्टि से '*चलना*' शब्द मोटा हो गया है। एक दूसरा उदाहरण '*उठना*' शब्द का लीजिए। मूलतः '*उठना*' का अर्थ है 'ऊपर आना'। आज यह शब्द बहुत मोटा हो गया है। कुछ प्रयोग इसके मोटेपन या अर्थ-विस्तार को स्पष्ट कर देंगे।

१. अभी तक सो रहे हो, *उठे* नहीं ?

२. अब न बैठो, *उठो*। अभी दूर जाना है।

३. देश को '*उठाने*' वाले तो हमीं-तुम हैं।

४. वह आज संसार से *उठ* गया।

५. बाज़ार उठने वाला है।

हमारी बहुत सी क्रियाओं में इस प्रकार का विस्तार हुआ है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—

बात का *रहना*, जाति का *सोना*, मुँह का *खिलना*, फूल का *हँसना*, कली का *चटकना*, आँख का *हँसना*, देह का *टूटना*, दिल का *टूटना*, बात का *कटना*, घर का *रोना*, पुस्तक का *मरना*, संस्था का *चलना*, पेशाब का *जलना*, रोब का *जमना*, आँख का *लगना*' (दो अर्थ), लात को *फेंकना*, दुकान का *बढ़ना*, तथा बच्चे का *झुकना* आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द भी मोटे होते हैं और बहुत से अंशों में, विशेषतः जीव, जाति, अंग तथा वस्तु के नामों एवं क्रियाओं के विस्तार से हमारी भाषा का विकास होता है और उसकी अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ती है। अन्य सामान्य शब्दों (ऊपर जैसे तेल, स्याही आदि का उदाहरण लिया गया है) के अर्थ-विस्तार से भाषा की समृद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके उल्टे, आगे जैसा कि हम देखेंगे, शब्दों का दुबला होना या अर्थ-संकोच भाषा को अवश्य समृद्ध बनाता है।

८ : : शब्द संगति से प्रभावित होते हैं

ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग बदलता है। दो-चार वर्ष अंग्रेज़ों के साथ रहने वाला हिन्दी-भाषी 'हम तुमको देखना नहीं मागता' कहने लगता है। 'तुख़्म तासीर सोहबत का असर' तथा 'संसर्गजा दोष गुणाः भवन्ति' भी यही नज़ीर पेश करते हैं। इसका आशय यह है कि संगति का असर सभी पर पड़ता है। सुना है कवियों की दुनिया में फूलों के नीचे रहने वाले मिट्टी के ढेले भी गन्धयुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार जड़ और चेतन सभी इस नियम के कायल हैं।

शब्द भी इसके अपवाद नहीं। वे भी एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। भाषा-शास्त्रियों की भाषा में संगति से प्रभावित होने को सादृश्य, औपम्य और उपमान कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसका नाम analogy है। कुछ दिन पूर्व तक इसे मिथ्या सादृश्य (False analogy) कहा जाता था, पर बाद में मिथ्या को मिथ्या जानकर छोड़ दिया गया और अब केवल सादृश्य कहते हैं।

शब्दों की दुनिया में प्रभावित होना औरों के प्रभावित होने से भिन्न है। आप अपने मित्र से प्रभावित होंगे तो उसके गुणों या दुर्गुणों को अपनाएँगे, पर शब्द जब प्रभावित होते हैं तो अपना स्वरूप ही बदल देते हैं। यदि आप किसी से प्रभावित हों और यदि वह व्यक्ति लँगड़ा हो तो आप भी लँगड़ाने लगें तो शब्दों की बराबरी कर

सकते हैं, अन्यथा नहीं।

सगुर्ण

कुछ उदाहरण लीजिए। हिन्दी का एक प्रचलित शब्द '*निर्गुण*' है। ब्रह्म के विशेषण के रूप में हम इसका प्रयोग करते हैं। इसका ही साथी पर इससे भिन्न अर्थ का एक शब्द '*सगुण*' है। निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म प्रयोग चलता है। यों तो '*सगुण*' शब्द '*सगुण*' या '*सगुन*' मिलता है और निर्गुण शब्द '*निर्गुण*' और '*निरगुन*'। पर अशिक्षित जनता में 'निर्गुन' या 'निरगुन' से प्रभावित होकर 'सगुण' सगुर्ण' या 'सरगुन' हो गया है। सन्त-कवियों ने भी इस रूप का प्रयोग किया है। कबीर लिखते हैं—

निरगुन *सरगुन* ते परे तहाँ हमारो ध्यान।

कहना न होगा कि यहाँ '*निर्गुण*' ने '*सगुण*' को प्रभावित किया है। सगुण ने सम्भवतः अपने साथी के सिर पर ताज देखा तो उससे न रहा गया और स्वयं भी देखा-देखी ताज पहनकर '*सगुर्ण*' बन बैठा।

बाहर

'*बाहर*' भी इसी प्रकार संगति से प्रभावित शब्द है। संस्कृत में शब्द '*बाह्य*' है। '*बाह्य*' से 'बाह' बन सकता है पर '*बाहर*' नहीं बन सकता। भाषा-शास्त्रियों को जब तक संगति से शब्दों के प्रभावित होने का पता न था यह एक समस्या थी। पर अब यह चीज़ स्पष्ट है। '*बाहर*' का ही साथी शब्द '*भीतर*' है। संस्कृत-शब्द '*आभ्यन्तर*' से हिन्दी '*भीतर*' निकला है, और उस साथी शब्द '*भीतर*' की संगति से प्रभावित होकर '*बाह्य*' से निकला शब्द '*बाह*' न होकर '*बाहर*' हो गया है। यदि यह संसर्ग का प्रभाव न होता तो आज हम 'बाह' शब्द का ही प्रयोग करते।

मुझ

'मुझ' शब्द भी इसका एक सुन्दर उदाहरण है। संस्कृत में शब्द 'मह्यम्' है। यदि यह शब्द 'मुह्यम्' होता तो 'मुझ' सम्भव था। 'मह्यम्' से निसृत शब्द को तो 'मझ' होना चाहिए। पर यहाँ भी 'बाहर' वाली बात है। 'मुझ' का साथी शब्द 'तुझ' है। संस्कृत शब्द 'तुभ्यम्' से 'तुझ' निकला है और उससे प्रभावित होकर 'मह्यम्' से निकला शब्द 'मझ' भी 'मुझ' हो गया है।

कुड (could)

'कुड' एक अंग्रेज़ी शब्द है। यह 'कैन' (Can) का रूप है। प्रश्न यह उठता है कि इसमें बीच में 'एल्' (L) कहाँ से आ गया। कैन में तो 'एल्' [L] है नहीं। बात यह है कि वुड (would) और शुड (should) शब्द 'कुड' के साथी हैं। ये शब्द विल (will) तथा शैल (shall) से बने हैं और 'विल' तथा 'शैल' में 'एल' है, अतः वुड और शुड में भी 'एल्' आ गया है और इन 'वुड' 'शुड' के प्रभाव से 'कुड' बेचारा भी एल्-युक्त हो गया है। बेचारे को संगति के कारण यह व्यर्थ का बोझा ढोना पड़ा है।

अंग्रेज़ी की क्रियाएँ

अंग्रेज़ी में क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं। जिनके रूप एक प्रकार से अर्थात् 'ed' लगाकर बनाए जाते हैं उन्हें तो निर्बल क्रिया (Weak Verb) कहते हैं जैसे टाक्ड (talked), वाक्ड (walked), लव्ड (loved) इत्यादि। दूसरी ओर जिन क्रियाओं के रूप अपने-अपने ढंग से अलग-अलग बनते हैं उन्हें बली क्रिया (Strong Verb) कहते हैं। जैसे *stand, stood, stood; see, saw, seen; go, went, gone* इत्यादि।

इसमें बात यह है कि भाषा के आरम्भ में सभी क्रिया बली थीं और सबके रूप अलग-अलग अपने ढंग से चलते थे। बलहीन या

कमज़ोरों पर ही प्रभाव शीघ्र पड़ता है, अतः जो-जो शब्द आपस में प्रभावित होते गए उनका रूप एक प्रकार से चलने लगा और वे 'निर्बल' की संज्ञा से विभूषित किये गए। दूसरी ओर जो शब्द अपने साथियों से अपने व्यक्तित्व की प्रौढ़ता के कारण प्रभावित नहीं हुए आज भी अलग हैं, अतः 'बली' कहे जाते हैं। धीरे-धीरे बली क्रियाएँ कम होती जा रही हैं, क्योंकि वे भी अपने साथियों से प्रभावित होती जा रही हैं। हो सकता है कि एक दिन ऐसा भी आए जब अंग्रेज़ी की सारी क्रियाएँ प्रभावित होकर निर्बल हो जायँ और सबका रूप एक प्रकार से चलने लगे।

सैंतीस तथा सैंतालीस

'सैंतीस' शब्द *'सप्तत्रिंशत्'* तथा *'सैंतालीस'* *'सप्तचत्वारिंशत्'* से निकले हैं। 'सप्त' से विकास 'सै' होना चाहिए अतः इन्हें 'सैतीस' तथा 'सैतालीस' होना चाहिए, पर ये 'सैंतीस' एवं 'सैंतालीस' हैं। प्रश्न उठता है कि यह अनुस्वार कहाँ से आ गया। इस शंका के समाधान के लिए हमें दोनों के साथी शब्द *'पैंतीस'* तथा *'पैंतालीस'* को देखना पड़ेगा। इन दोनों शब्दों में *'पैं'* 'पंच' से आया है जिसमें अनुनासिक ध्वनि है, अतः इनके पैं में बिन्दु होना ही चाहिए, और इन दोनों साथियों के बिन्दुओं (अनुस्वारों) से प्रभावित होकर *'सैंतीस'* और *'सैंतालीस'* भी अनुस्वारयुक्त हो गए हैं।

मनोकामना

शुद्ध शब्द 'मनकामना' है, पर आजकल सर्वत्र 'मनोकामना' शब्द प्रयुक्त होता है। तथ्य यह है कि संस्कृत में *'मनोगति'*, *'मनोयोग'*, *'मनोरंजन'* तथा *'मनोविकार'* आदि शब्द हैं और उन्हीं की संगति में पड़कर प्रभावित होकर बेचारा *'मनकामना'* *'मनोकामना'* हो गया है।

दायाँ

'दायाँ' शब्द संस्कृत शब्द '*दक्षिण*' से विकसित हुआ है। 'दक्षिण' से स्वाभाविक विकास 'दखिन', 'दाहिन', 'दहिन', 'दहिना' या 'दाहिना' हो सकता है। इनमें 'दाहिन', 'दहिन', दहिना' तथा 'दाहिना' शब्द तो मिलते भी हैं। पर '*दक्षिण*' का '*दायाँ*' कैसे हुआ यह समझ में नहीं आता। इस विकास का रहस्य यह है कि संस्कृत शब्द '*बाम*' का विकसित रूप '*बायाँ*' है और इसके संसर्ग के प्रभाव से 'दक्षिण' का विकसित रूप 'दाहिना', 'दायाँ' हो गया है।

सुक्ख

'*सुक्ख*' शब्द शुद्ध नहीं है तथा साहित्य में आजकल प्रयुक्त नहीं होता, पर ग्राम-बोलियों में बोला जाता है। कबीर का एक दोहा है—

> जे जन भीजे रामरस बिकसित कबहुँ न रुक्ख।
> अनुभव भाव न दरसैं ते नर सुक्ख न दुक्ख।

इस शब्द के बनने का कारण यह है कि 'दुःख' शब्द विसर्ग के कारण 'दुक्ख' हो गया है और उसका साथी होने से 'सुख' शब्द भी उसी से प्रभावित होकर 'सुक्ख' हो गया।

राजनैतिक

'*राजनैतिक*' शब्द भी आजकल बहुत प्रचलित है, यद्यपि यह शुद्ध नहीं है। व्याकरण के नियम के अनुसार '*राजनीति*' से '*राजनैतिक*' न बनकर '*राजनीतिक*' शब्द बनेगा। '*राजनैतिक*' शब्द बनने का रहस्य यह है कि संस्कृत में '*नीति*' शब्द से '*नैतिक*' बनता है। यहाँ '*राजनीति*' के अन्त में भी '*नीति*' है अतः '*नीति*' से '*नैतिक*' के सादृश्य पर '*राजनीति*' का '*राजनैतिक*' बन गया है।

यहाँ तक हम लोग उदाहरणों पर विस्तार से विचार करते रहे। अब संक्षेप में कुछ और उदाहरण देखे जा सकते हैं।

सभी भाषाओं के शब्द संगति से प्रभावित होते देखे जाते हैं। ऊपर अंग्रेज़ी के 'कुड' तथा निर्बल क्रियाओं पर विचार किया जा चुका है। *आफ़्टर* (after) के अन्त का 'अर' '*बिफ़ोर*' (Before) के प्रभाव से आया है।

संस्कृत में भी शब्दों का संगति से प्रभावित होना पर्याप्त मात्रा में मिलता है। '*बृहस्पति*' में बृहः षष्ठी का रूप है अतः बृहस्पति नियमतः ठीक है। इसी के प्रभाव से '*वनस्पति*' बना है, यद्यपि नियमतः इसमें 'स्' नहीं होना चाहिए। '*पति*' शब्द का पंचमी का रूप नियमतः '*पतेः*' होना चाहिए जैसा कि कुछ स्थानों पर मिलता भी है, पर इसका प्रचलित रूप '*पत्युः*' है। यहाँ यह शब्द *स्वसृ*, *मातृ* तथा *पितृ* आदि अन्य निकट सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त शब्दों से प्रभावित है। इनका भी पंचमी का रूप क्रम से *स्वसुः*, *मातुः* तथा *पितुः* होता है। संस्कृत में '*ग्यारह*' के लिए मूलतः '*एकदश*' शब्द है जो '*द्वादश*' से प्रभावित होकर '*एकादश*' हो गया है। पहले संस्कृत में केवल युग्म शब्दों के लिए द्विवचन का प्रयोग चलता था। *पादौ*, *कर्णौ* तथा *पितरौ* आदि। बाद में इन शब्दों के प्रभाव से विलोम युग्म के लिए भी होने लगा। *लाभालाभौ*, *जयाजयौ*। कुछ दिन बाद यह प्रभाव और भी बढ़ा और द्वन्द्व समास वाले शब्दों में भी यह होने लगा, *सिंह-शृगालौ* तथा *रामलक्ष्मणौ* आदि। संस्कृत '*कियत्*' शब्द से प्राकृत में '*कित्तिय*' बना। '*एतावत्*' से '*एत्तिय*' होता पर '*कित्तिय*' के संग के प्रभाव से '*इत्तिय*' हो गया। साथ ही इन दोनों के प्रभाव से एक तीसरा शब्द '*जित्तिय*' भी बना। ये ही तीनों हिन्दी में *कित्ता*, *इत्ता*, *जित्ता* या *कितना*, *इतना*, *जितना* हैं। यहाँ भी इनका आपस में प्रभावसाम्य स्पष्ट है। *कर्मन्*, *चर्मन्* आदि 'अन्' अन्त वाले शब्दों का प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन में '*कर्माणि*' तथा '*चर्माणि*' बनता है, पर इनके ही प्रभाव से फल (जिसके अन्त में 'अन्' नहीं है) का भी '*फलानि*' बन जाता है।

इस प्रकार के और भी बहुत से रूप संस्कृत में भरे पड़े हैं जो दूसरे शब्दों के रूपों से प्रभावित हैं।

ये तो शब्दों के प्रभावित होने की पुरानी बातें हैं। आज भी हमारी अज्ञानता या विद्वान् बनने की प्रवृत्तिवश बहुत से शब्द दूसरे शब्दों से प्रभावित होते देखे जाते हैं।

अंग्रेज़ी पढ़ने वाला भारतीय विद्यार्थी *फ़ाक्स* (Fox) का बहुवचन *फ़ाक्सेज़* (foxes) तथा *बाक्स* (Box) का बहुवचन *बाक्सेज़* (Boxes) पढ़ता है तो कभी-कभी अज्ञानता-वश उसी ढर्रे पर *ऑक्स* (Ox) को भी इन शब्दों से प्रभावित करके उसका बहुवचन *आक्सेज़* (Oxes) कर देता है, यद्यपि व्याकरण से इसे *आक्सेन* (Oxen) होना चाहिए। इसी प्रकार एस् (S) या ई एस् (es) लगाकर बहुवचन बनाने के नियम को वह *शीप* (Sheep) में लगाकर *शीप्स* (Sheeps) बना लेता है, यद्यपि शुद्ध शब्द *शीप* (Sheep) है। बहुवचन में भी इसका रूप नहीं बदलता। विद्यार्थी 'एफ़्' अन्त में रहने वाले शब्दों का बहुवचन 'एफ़्' के स्थान पर वी ई एस् रखकर बनाता है और फिर इसी नियम से *हूफ़* (Hoof) का *हूव्ज़* (Hooves) कर लेता है, यद्यपि नियमतः Hoof का बहुवचन Hoofs होता है।[1]

हिन्दी में कुछ लोग अज्ञानवश या अपना पांडित्य दिखलाने के लिए *सुन्दरता, मनोहरता* आदि के सादृश्य पर *पांडित्यता, सौन्दर्यता, वैकल्पता*' आदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं। कहना न होगा कि ये शब्द भी प्रभाव के कारण ही इस रूप को पहुँचते हैं।

संसार की सभी भाषाओं में व्याकरण के नियम रूपों एवं शब्दों के आपस में प्रभावित होने के कारण ही बनते हैं और इसी कारण एक शब्द के रूप याद करके हम उसके आधार पर दूसरे शब्दों के रूप बना लेते हैं। इस प्रकार शब्दों का एक-दूसरे से प्रभावित होना भाषा को

---

१. कुछ लोगों के अनुसार hooves शब्द भी शुद्ध है, यद्यपि अधिकतर hoofs ही प्रयुक्त होता है।

सरल बनाता है तथा उसे नियम एवं एकरूपता प्रदान करता है।

इस प्रकार शब्दों का संगति से प्रभावित होना मनोरंजक होने के साथ-साथ भाषा के विकास तथा उसकी सरलता की दृष्टि से बड़ा स्वस्थ तथा श्रेयस्कर है। यथार्थतः प्रभाव-साम्य से बने शब्द या रूप व्याकरण-विरुद्ध तथा अशुद्ध हैं, पर यह आश्चर्य है कि इस अशुद्धि से ही हमारा इतना बड़ा लाभ होता रहा है, हो रहा है और भविष्य में भी निश्चय ही होता रहेगा।

९ : : शब्द उन्नति करते हैं

शब्दों के उन्नति करने का अर्थ है उनके अर्थ का अवनतावस्था से उन्नतावस्था की ओर आना। एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी। आज का 'अछूत' शब्द १९२० के पहले के 'अछूत' शब्द के साथ नहीं रखा जा सकता। महात्मा गांधी ने अपने वरदहस्त से अछूतों का स्पर्श करके तथा उन्हें हरिजन कहकर इस शब्द को काफी ऊँचा उठा दिया है। यदि १९२० के पूर्व के 'अछूत' शब्द के साथ गंदा, नीच तथा विद्या एवं ज्ञान का अनधिकारी आदि घृणात्मक भावनाएँ लगी थीं तो आज के 'अछूत' शब्द के साथ युग-युग का कुचला, समाज का सच्चा सेवक आदि करुणा एवं श्रद्धा की भावनाएँ संबद्ध हैं। इस प्रकार इस शब्द ने पर्याप्त उन्नति कर ली है। स्वदेशी आन्दोलन की पवित्र आग में जलकर 'जेल', 'कारा', 'बंदी' तथा 'क़ैदी' आदि शब्द भी उन्नति कर गए हैं। उनके साथ घृणा का भाव प्रायः समाप्त हो गया है।

शब्दों का इस प्रकार का उत्थान सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक आदि कई प्रकार के कारणों से होता है। कभी-कभी ये कारण मिश्रित रूप में भी कार्य करते हैं। किन्तु, इस विषय में अभी तक इतना कार्य नहीं हुआ है कि प्रत्येक शब्द के उत्थान के साथ उसके कारण को भी स्पष्ट किया जा सके।

यहाँ शब्दों के उत्थान के कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते

हैं। आज का एक प्रचलित शब्द 'साहस' है। इसका प्राचीन अर्थ बुरा कार्य होता था। स्मृतियों में साहस पाँच प्रकार के कहे गए हैं :

मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिमर्षणम्,
पारुष्यमनृतं चैव साहसं पंचधास्मृतम्।

इस प्रकार '*साहस*' में मनुष्य-हत्या, चोरी, पर-स्त्री-संभोग, परुषता तथा झूठ ये पाँच कार्य आते हैं। इस दृष्टि से किसी को 'साहसी' कहना साक्षात् गाली है। पर, आज '*साहस*' का अर्थ 'हिम्मत' हो गया है और कोई भी व्यक्ति अपने लिए किसी के द्वारा 'साहसी' शब्द-प्रयोग सुनकर गर्व से छाती फुला सकता है। साहस की यह उन्नति सचमुच बड़ी आश्चर्यजनक है।

इसी प्रकार का एक शब्द '*गोसाईं*' या '*गोसैयाँ*' है। इसका मूल संस्कृत शब्द '*गोस्वामी*' है जिसका अर्थ गायों का स्वामी होता था। हलायुध ने लिखा है :

व्रजः स्याद्गोकुलं गोष्ठं गोवृन्दं गोधनं धनम्,
गोमान् गोमी च *गोस्वामी* गोविंदोऽधिकृतो गवाम्।

आज '*गोस्वामी*' के तीन अर्थ हैं। एक अर्थ तो एक जाति-विशेष का है। दूसरा अर्थ 'पूज्य' या 'संत' है, जैसे *गोस्वामी* तुलसीदास। तीसरा अर्थ 'ईश्वर' है। इस अर्थ में '*गोसाईं*' या उसका रूप '*गोसैंया*' दोनों प्रयुक्त होते हैं। भोजपुर प्रदेश में लोग शपथ लेते हैं 'गऊ गोसैंयाँ।' तुलसी ने भी लिखा है :

देव पितर सब तुम्हहिं *गोसाईं*।

'*गोस्वामी*' शब्द 'गौवों के स्वामी' से 'ईश्वर' का पर्याय हो गया। इस उत्थान में धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक कार्यों ने कार्य नहीं किया है। '*गोस्वामी*' का एक अर्थ 'इन्द्रियों का स्वामी' भी होता है। संभवतः इसी भावना ने इस शब्द को इतना अधिक ऊँचा उठाया है। शब्द-संसार में उन्नति की यह पराकाष्ठा है।

आज का '*मुग्ध*' शब्द भी इसी प्रकार का है। इसका पुराना अर्थ

'मूढ़' या 'मूर्ख' होता था। 'भामिनीविलास' में कहा गया है :

शशांक केन मुग्धेन सुधांशुरिति भाषितः।

किन्तु अब तो इसमें मूर्खता की तनिक भी गन्ध नहीं है। आप भगवान् के रूप पर भी मुग्ध हो सकते हैं और किसी नायिका के सौन्दर्य पर भी। परवर्ती संस्कृत-साहित्य में भी इसके आकर्षक, भोला-भाला तथा सुन्दर आदि अर्थों में प्रयोग मिलते हैं। जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' में लिखा है :

हरिरिह मुग्ध वधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे।

एक दूसरा शब्द '*कपड़ा*' लीजिए। संस्कृत में यह शब्द '*कर्पट*' था और इसका अर्थ फटा पुराना कपड़ा होता था। अमरकोषकार ने कहा है :

पटच्चरं जीर्णवस्त्रं समौ नक्तक *कर्पटौ*।

पालि में भी यह '*कप्पट*' होकर इसी अर्थ में प्रयुक्त होता था। पर, अब इससे उद्भूत '*कपड़ा*' शब्द नये-से-नये और सुन्दर-से-सुन्दर वस्त्र के लिए भी प्रयुक्त होता है। या यों कहो कि अर्थ की दृष्टि से यह शब्द बूढ़े से जवान हो गया है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी।

'*फिरंगी*' शब्द भी इसी श्रेणी का है। पहले इस शब्द का प्रयोग पुर्तगाली डाकुओं के लिए होता था पर अब सभी यूरोपियनों के लिए या विशेषतः अंग्रेज़ों के लिए होता है। 'डाकू' से बेचारा 'भला आदमी' बन गया। भला इससे अधिक किसी की क्या उन्नति हो सकती है! सत्तर चूहे खाकर इस बिलाई ने सचमुच हज कर लिया।

'*दर्शन*' का प्राचीन अर्थ देखना है। उसमें अच्छे या बुरे के देखने का कोई विशिष्ट भाव नहीं। पर अब या तो देवी-देवताओं के *दर्शन* होते हैं या नेता-महात्मा आदि असाधारण व्यक्तित्वों के। इसी प्रकार '*पधारना*' शब्द पग धारने से बना है किसी के भी आने को '*पधारना*' कह सकते हैं। पर, अब यह शब्द उन्नत हो गया है और केवल आदरणीय व्यक्ति के आने को ही '*पधारना*' कहते हैं। यदि हम-आप कहें

कि मैं कल पधारूँगा तो लोग हँस देंगे।

अँग्रेज़ी में एक प्रसिद्ध शब्द *क्वीन* (Queen) है। इसका पुराना या मूल अर्थ 'स्त्री' था पर अब तो यह 'रानी' के पद पर आकर बहुत उन्नति कर गया है।

'*राम*' शब्द ने भी पर्याप्त उन्नति की है। वैदिक साहित्य से लेकर 'वाल्मीकि रामायण' तक राम अधिक-से-अधिक महापुरुष थे। उनमें अलौकिकता की कोई बात न थी। पर अब तो यह शब्द साक्षात् भगवान् हो गया है। इस नाम की उद्धरणी करके कोई भी स्वर्ग जा सकता है। '*राम*' को उठाने वालों में कबीर और तुलसी का विशेष हाथ रहा है। कृष्ण में भी इसी प्रकार विकास हुआ है, और अब वे भी ब्रह्म के समकक्ष आसीन हैं।

किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु या नाम आदि के प्रति इस प्रकार की धार्मिक भावनाओं के केन्द्रीभूत होने के कारण बहुत से शब्दों की अवस्था पहले की अपेक्षा समुन्नत हो गई है। *ब्रह्मा*, *विष्णु*, *महेश* आदि अनेक देवी-देवता इसी श्रेणी के हैं। '*मूर्ति*' शब्द भी बहुत उठ आया था, पर अब तो इसके नीचे आने के आसार दिखाई दे रहे हैं। '*पीपल*' या '*तुलसी*' पेड़ भी पूजा के अधिकारी होने से ऊपर उठ आये हैं। *प्रयाग*, *मथुरा*, *बनारस* आदि बहुत से तीर्थों के नामों में भी इस प्रकार का उत्थान हुआ है। '*गंगा*' और '*जमुना*' तो गंगा जी और जमुना जी हो चुकी हैं। '*जल*' शब्द मूलतः '*पानी*' के ही स्तर का था पर अब इसका प्रयोग प्रायः तीर्थों से लाये गए जल, गंगाजल, या पूजा के काम के जल के लिए होता है। यदि किसी को पानी पीना है तो वह कहेगा, पानी लाओ—यों जल लाओ भी लोग कहते हैं पर बहुत कम—पर यदि किसी को पूजा के लिए पानी मँगाना है तो 'पानी' न कहकर '*जल*' शब्द का ही प्रयोग करेगा। इस प्रकार '*जल*' के साथ एक पवित्रता की भावना लग जाने से यह उन्नत हो गया है। '*भोग*' का अर्थ था 'खाना' या 'उपभोग' करना। पर बाद में देवता या

देवी के भोग लगाए जाने वाले भोजन को '*भोग*' कहने लगे। अब 'कर्म-भोग' आदि कुछ प्रयोगों को छोड़कर '*भोग*' शब्द देवी-देवताओं के '*भोग*' के पवित्र अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। '*गायत्री*' एक वैदिक छन्द का नाम था। इसी छन्द में लिखित एक मन्त्र की प्रतिष्ठा होने से अब लोग छन्द-रूप में भूलकर उस मन्त्र को ही गायत्री मानने लगे हैं, अतः इसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई है।

'*तीर्थ* का मूल अर्थ है तीर पर बसा स्थान। पर अब इसका अर्थ पवित्र स्थान हो गया है। इस शब्द ने भी काफ़ी उन्नति कर ली है।

'*मुनि*' शब्द का सम्बन्ध 'मौन' शब्द से है। आरम्भ में 'मौन' रहने वाले को '*मुनि*' कहते थे, पर मौन प्रायः 'तपस्वी' आदि ही रहते थे अतः धीरे-धीरे यह शब्द 'तपस्वी' या 'ऋषियों' के लिए प्रयुक्त होने लगा। अब तो *मुनि* शब्द साक्षात् 'ऋषि' या 'तपस्वी' हो गया है। रामचरितमानस में भी आया है—

निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली *मुनि* चरना॥

'*सत्*' शब्द का पुराना अर्थ था 'जो हो'। आप्टे ने इसका पहला अर्थ Being Existing दिया है, पर अब तो इसका अर्थ 'अच्छा' होता है। वह सत्पुरुष (सत् + पुरुष) है, तुम तो सज्जन (सत् + जन) हो, सदाचार (सत् + आचार) से रहो आदि।

शब्दों की उन्नति के विषय में दो और बातें कही जा सकती हैं। कभी तो मूल शब्द अपने साधारण अर्थ में प्रयुक्त होता है और उससे विकसित शब्द उन्नति कर जाता है, जैसे *स्थान* तो किसी स्थान को कहते हैं, पर देहात में '*थान*' देवी या ब्रह्म के स्थान को कहते हैं।[1] पर साथ ही दूसरी ओर विकसित शब्द जब बुरे अर्थ में या अवनत अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है तो मूल शब्द स्वभावतः उन्नत दिखाई पड़ने लगता है। यों *गर्भिणी* किसी के भी लिए प्रयुक्त होता था पर जब से इसका विकसित शब्द *गाभिन* पशुओं के लिए प्रयुक्त होने लगा

१. यों थान का प्रयोग हाथी के स्थान के लिए भी होता है।

है *गर्भिणी* प्रायः केवल 'स्त्री' के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार प्रयोग की दृष्टि से यह शब्द कुछ उन्नत हो गया है।

शब्दों में इस प्रकार का उत्थान सभी भाषाओं में पाया जाता है। मनोरंजन तथा लोगों की मानसिक अवस्था या उनका मानसिक विकास समझने के लिए इस दृष्टि से शब्दों का अध्ययन बड़ा फलप्रद हो सकता है।

१० : : शब्द अवनति करते हैं

कहते हैं 'जिसकी उन्नति होती है वह अवनति भी करता है।' शब्दों के विषय में यह तो सत्य नहीं है कि जो शब्द विशेष उन्नति करता है वही गिरता या अवनति भी करता है; पर हाँ यह सत्य है कि यदि कुछ शब्द अपने जीवन में उन्नति करते हैं जैसा कि पीछे हम देख चुके हैं, तो कुछ अवनति भी करते हैं जैसा कि यहाँ हम देखेंगे।

अरबी का एक शब्द '*गुलाम*' है। यह हिन्दी में भी प्रचलित है। अभी कल तक हमारा देश गुलाम रहा है। मूलतः अरबी में इसका अर्थ 'बच्चा' होता था। विकसित होकर बाद में यह शब्द बच्चे से लेकर २५ वर्ष के जवान तक के लिए प्रयुक्त होने लगा और आगे चलकर इसका अर्थ अधेड़ हो गया। फिर किन्हीं परिस्थितियों में पड़कर यह नौकर का अर्थ रखने लगा और आज तो बेचारा नौकर से भी गया-गुजरा हो गया है। नौकर तो प्रतिमास वेतन पाता है और जब चाहे नौकरी छोड़ सकता है, पर '*गुलाम*' का तो अपने शरीर और जीवन पर भी कोई अधिकार नहीं रहता। मालिक ही उसका सब-कुछ या ईश्वर है। यहाँ हम स्पष्ट देखते हैं कि '*गुलाम*' शब्द की बहुत अवनति हो गई है। मध्ययुग के आरम्भ में इस शब्द का भाग्य अवश्य पलटा था, जब यह दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ था; पर फिर गुलाम-वंश के पतन के बाद अपने पुराने पतित स्थान पर आ

गया। कौन जाने अभी इसे किस रसातल में गिरना है ?

दूसरा उदाहरण संस्कृत शब्द 'असुर' का लिया जा सकता है। धातुतः इसका सम्बन्ध 'अस्' धातु से है जिसका अर्थ चमकना होता है। इसी आधार पर 'असुर' का प्राचीनतम अर्थ 'सूर्य' था। आप्टे ने अपने संस्कृत कोष में और अर्थों के साथ इसे भी दिया है। आगे चलकर 'असुर' शब्द देववाची हुआ और देवताओं के लिए प्रयुक्त होने लगा। ऋग्वेद में आता है—

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः।

पर आज यह शब्द राक्षसवाची है तथा इसमें से 'अ' अलग करके 'सुर' को देववाची माना गया है। 'असुर' शब्द के इस पतन का अनुमानित कारण यह है कि जिस प्रकार 'असुर' हमारे यहाँ देववाची था उसी प्रकार परिवर्तित रूप या ध्वन्यन्तर से यही शब्द 'अहुर' (अहुर मज़्दा) के रूप में पारसियों के यहाँ देव या ईश्वरवाची था। जब आर्यों और पारसियों में विरोध हुआ तो उनके देववाची शब्द असुर (अहुर) को हमने अपने यहाँ पदच्युत करके राक्षसवाची करार दिया तथा 'अ' हटाकर सुर को देववाची बनाया। पर साथ ही पारसी भी कब चूकने वाले थे। उन्होंने हमारे शब्द 'देव' को अपने यहाँ असुरवाची बना लिया। खैर यह तो इन लोगों का आपसी वैर था और बुरा हुआ बेचारे शब्दों का। संस्कृत में 'असुर' शब्द अवनति को प्राप्त हुआ और पुरानी फ़ारसी में 'देव'।

वेद-वाक्य 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' में 'कवि' का अर्थ मेधावी है। बाद में संस्कृत-साहित्य में इसका अर्थ 'कविता करने वाला' है। ये दोनों ही अर्थ पर्याप्त सम्मान्य हैं। संस्कृत के बाद भी पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी में इसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है। कवियों का कितना सम्मान होता था कहने की आवश्यकता नहीं। अभी कुछ ही सदी पूर्व भूषण की पालकी में महाराज छत्रसाल ने कन्धा लगाया था। पर छायावादी युग के आते ही 'कवि' शब्द का

इतना पतन होना शुरू हुआ कि आज तो उसे एक साहित्यिक गाली कहें तो अत्युक्ति न होगी। जहाँ पहले 'कवि' शब्द के साथ श्रद्धा, सम्मान, पांडित्य एवं असाधारणत्व की भावना थी अब इसका अर्थ भावुक, संसार में रहने के अयोग्य, कुछ मूर्खता लिये, महत्त्वाकांक्षी, दिवास्वप्न की प्रतिमूर्ति तथा अव्यावहारिक आदि है। कहाँ तो राजा लोग कवियों की पालकी उठाने में अपना गौरव समझते थे और आज कहाँ वही कवि बरसाती मेंढकों की भाँति दर-दर की खाक छान रहे हैं। 'कवि' शब्द के इस अप्रत्याशित पतन के कारण जानने के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। कवियों का आधिक्य तथा उनमें गम्भीरता का अभाव एवं कल्पना का असन्तुलित आधिक्य आदि पर ही उनकी इस अवनति का उत्तरदायित्व है।

मूर्ख, जाहिल या उजड्ड अर्थ में प्रयुक्त शब्द 'उज़्बक' लीजिए। मूलतः यह तुर्की भाषा का शब्द है। तुर्की भाषा में 'उज़्बक' एक तातारी या तूरानी कबीले को कहते हैं। बाबर भी इस कबीले से सम्बद्ध था; इस कबीले के बहुत से लोगों को अपनी सेना में लाया था। आरम्भ में यहाँ भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ। नूरुलहसन नय्यर के 'नूरुल लुगात' में एक शेर उद्धृत है, जिसमें इस शब्द का यही अर्थ है। शेर यों है—

ढीठ व तेज़ कि आलम में नहीं जिसकी पनाह,
चश्म व तुर्क की हो कौम जिन्हूँ की उज़बक।

भारत में आने के बाद कुछ दिन तक तो यह शब्द अपने मूल अर्थ में प्रयुक्त होता रहा जैसा कि उपर के शेर से स्पष्ट है, पर बाद में इसका पतन आरम्भ हो गया। प्रश्न यह उठता है कि मुग़ल खानदान के आदि पैतृक नाम या ज़ात से सम्बद्ध नाम की यह दुर्दशा (मूर्ख का पर्याय होने की दुर्दशा) उनके सामने ही क्यों हुई। इसका एकमात्र उत्तर यह है कि विज्ञान के नियम संसार में बड़े-छोटे आले-अदने किसी की भी अवहेलना करके घटित हो सकते हैं। मुग़ल जब भारत में आये

तो स्पष्टतः सभ्यता तथा संस्कृति में भारतीयों की तुलना में पीछे थे। वे स्वभाव से उजड्ड और क्रूर थे ही, अतः '*उज़्बक*' शब्द भारत में आने के बाद ही हिन्दू जनता में क्रूरता, उजड्डुता तथा शायद मूर्खता आदि के प्रतीक के रूप में प्रचलित हुआ। कुछ दिन बाद मुग़ल खानदान से '*उज़्बक*' शब्द के सम्बन्ध को लोग जब भूल गए तो जनता में प्रचलित भावना स्वभावतः बलवती हुई और उस भावना के साथ उजड्ड तथा मूर्ख आदि अर्थ में यह शब्द चालू हो गया। इस प्रकार इस शब्द का पतन उज़बक जाति के प्रति भारतीयों (हिन्दुओं) के कुछ गिरे दृष्टिकोण के कारण हुआ। फ़ारसी में ठीक यही दशा '*हिन्दू*' शब्द की हुई है। इसका भी कारण है वहाँ के लोगों का हिन्दुओं के प्रति घृणापूर्ण दृष्टिकोण। फ़ारसी कोषों में '*हिन्दू*' का अर्थ हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त काला नौकर, गुलाम, लुटेरा तथा अपवित्र आदि मिलते हैं।

'*उढ़री*' अवधी तथा भोजपुरी का प्रचलित शब्द है, जिसका अर्थ 'भगाई हुई स्त्री' होता है। इस रूप में यह एक गाली भी है, जिसका प्रयोग निम्न वर्ग की स्त्रियाँ करती हैं। मूलतः यह शब्द संस्कृत-शब्द '*ऊढा*' से सम्बद्ध है। 'ऊढि' का अर्थ विवाह, 'ऊढ' का विवाहित पुरुष तथा '*ऊढा*' का विवाहिता स्त्री होता है। 'विवाहिता स्त्री' से इसका अर्थ 'भगाई हुई स्त्री' हो गया और यह स्पष्टतः इस शब्द की अवनति है। इस अवनति का कारण शब्द के धातु 'वह' (ले जाना) में ही छिपा है। मध्ययुग में जब नायिका-भेदों में नये-नये अनुसन्धान होने लगे तो परकीया नायिकाओं के एक भेद को '*ऊढ़ा*' नाम दिया गया। रीतिशास्त्र में '*ऊढ़ा*' उस नायिका को कहा गया है जो विवाहिता हो पर अपने पति की उपेक्षा करके दूसरे से स्नेह करे। बाद में इसी दिशा में और विकास या ह्रास हुआ और इसकी धातु 'वह' (ले जाना या उठा ले जाना) की सार्थकता और बढ़ो तथा इस प्रकार जिस शब्द का पुराना अर्थ विवाहिता स्त्री था उसका

अवनति-प्राप्त अर्थ भगाई हुई स्त्री बनकर एक गाली बन गया।

'*बाबू*' शब्द बड़े रोब और ठाठ का है। बाबू श्यामसुन्दरदास या बाबू सम्पूर्णानन्द आदि में, या देहातों में ज़मींदार आदि को 'बाबू' कहने में, या अपने पिता को '*बाबू*' या बाबूजी कहने में इसका वही ऊँचा अर्थ है। पर शहरों में दफ़्तर का बाबू एक वह व्यक्ति समझा जाता है जो दीनता, विवशता और 'बाहर लाँबी-लाँबी धोती, भीतर महुवा की रोटी' की प्रतिमूर्ति है। कहना न होगा कि यहाँ इस शब्द का अर्थ गिर गया है। पर इतना ही नहीं, बनारस या उसके आसपास के स्थानों में '*बाबू*' का एक अर्थ छैला, ज़नख़ा या लौंडा (जिसके साथ अप्राकृतिक मैथुन किया जाय) भी होता है। यह इस शब्द के पतन की पराकाष्ठा है।

'*लौंडा*' या '*लौंडिया*' शब्द प्रयाग आदि में प्रायः 'लड़का' और 'लड़की' का ही अर्थ रखते हैं, पर पूर्वी ज़िलों में दोनों ही अवनत हैं। 'लौंडा' की व्याख्या तो ऊपर की जा चुकी है। 'लौंडिया' शब्द भी कुछ उसी के समीप 'व्यभिचारिणी' से मिलता-जुलता अर्थ रखता है। 'राजा' जैसा उच्च शब्द भी पूर्वी ज़िलों में कुछ 'लौंडा' के ही समीप पहुँच गया है।

'*गुरु*' जैसा भारतीय संस्कृति का पवित्र और गरिमामय शब्द भारतीय संस्कृति के केन्द्र काशी में ऐसी विपन्नावस्था में पहुँचा हुआ है कि तरस आता है। गुण्डे या बदमाशों की मंडली में इस शब्द का प्रयोग उस फ़न में दक्ष व्यक्ति के लिए या हमजोली के लिए होता है। इसके अतिरिक्त भी 'वह तो बड़ा *गुरु* है' कहकर किसी व्यक्ति के मक्कार या धूर्त होने का भाव व्यक्त किया जाता है।

हिन्दी-उर्दू का एक प्रचलित शब्द '*कसबी*' है, जिसका अर्थ रंडी या वेश्या होता है। मूलतः यह शब्द अरबी माद्दा 'क़ाफ़-सीन-बे' से बना है जिसका अर्थ कमाना या हासिल करना होता है। इस शब्द का 'वेश्या' रूप में पतन बहुत पुराना नहीं है। तुलसीदास की रचना में

'*किसबी*' शब्द कमाने वाला या मज़दूर के अर्थ में आया है—

किसबी, किसान-कुल, बानिक, भिखारी, भाँट,

चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी।

इसका आशय यह है कि तुलसीदास के बाद यह शब्द गिरा है। क्यों गिरा, यह कह सकना तो कठिन है।

'*नट*' शब्द का प्राचीन अर्थ नाट्यकला में प्रवीण व्यक्ति होता था। आज '*नट*' शब्द कभी तो उस घूमने वाली जाति के लिए प्रयुक्त होता है जो गाँव-गाँव घूमती और भिक्षा, संगीत, पहलवानी, कसरत, जादू तथा चोरी आदि से अपनी जीविका चलाती है, और कभी-कभी यह शब्द 'पाखंडी' या 'नखरेबाज़' के लिए प्रयुक्त होता है। (मारो, साला नट है, इसका क्या विश्वास?)

आज '*पाखंड*' (पाषंड) का अर्थ ढोंग या आडम्बर है। अशोक के समय में इस नाम का एक साधुओं का सम्प्रदाय था, जो बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था तथा जिसे अशोक ने स्वयं आदर के साथ धन आदि दिया था। लगता है बाद में इस सम्प्रदाय में 'ढोंग' आदि घर कर गए, अतः लोगों की श्रद्धा इसके प्रति घट गई और इसका नाम '*पाषंड*' या '*पाखंड*' ढोंग के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। '*चालाक*' शब्द में भी इसी प्रकार अव पतन आ गया है। इसका प्रारम्भिक अर्थ केवल 'चतुर' था, पर चूँकि आज के युग का '*चालाक*' 'मक्कारी' आदि अवगुणों से भी लैस रहता है, अतः '*चालाक*' का अर्थ 'मक्कार' होने लगा है। '*होशियार*' तथा 'चतुर' आदि भी धीरे-धीरे इसी अधोगति की ओर झुक रहे हैं।

'*ख़ैरख़्वाह*' का मूल अर्थ ही 'ख़ैर' की 'ख़्वाहिश' रखने वाला या भलाई चाहने वाला, पर आज '*ख़ैरख़्वाह*' शब्द प्रायः चापलूस के लिए प्रयुक्त होता है। 'महाजनो येन गतः स पंथाः' का '*महाजन*' (बड़ा आदमी) शब्द आज बनिये के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। '*श्रेष्ठ*' शब्द अपनी श्रेष्ठता से उतरकर '*सेठ*' बनकर आज सुनारों

या बनियों का पर्याय हो गया है। भगवान् का अर्थ रखने वाला 'ठाकुर' शब्द बंगालियों में अब रसोइये का अर्थ रखता है। गुज़रात तथा बम्बई में '*भैया*' (भ्रातृवर का अर्थ रखने वाला) शब्द का अर्थ उत्तर प्रदेशीय मोटा-ताज़ा नौकर लिया जाता है। '*सत्*' का मूल अर्थ 'वर्तमान' या 'विद्यमान' था और '*असत्*' का अविद्यमान, पर अब '*असत्*' शब्द गिर गया है और बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस 'असत्' शब्द का पतन शायद इस कारण हुआ है कि यह शब्द 'असत्य' से मिलता-जुलता है।

अरबी शब्द '*मौला*' का मूल अर्थ ख़ुदा या आक़ा है।

मेरे *मौला* बुला ले मदीने मुझे।

पर अब इसका अर्थ '*गुलाम*' के समीप आ गया है। अरबी का ही दूसरा शब्द '*ख़लीफ़ा*' लीजिए। इसका मूल अर्थ है उत्तराधिकारी। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारियों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था जो आज भी मुसलमानों के प्रधान नेता[1] माने जाते हैं। मुसलमान बादशाहों को भी '*ख़लीफ़ा*' कहा जाता रहा है। तुर्की ख़लीफ़े प्रसिद्ध हैं। पर आज हिन्दी-उर्दू में '*ख़लीफ़ा*' का कभी तो दरज़ो के लिए प्रयोग होता है, कभी हज्जाम या नाई के लिए, कभी पहलवान या कुश्ती लड़ाने वाले के लिए और कभी-कभी धूर्त के लिए। 'यार तुम भी *खलीफ़ा* ही निकले !' इसका ही साथी एक दूसरा शब्द '*हज़रत*' है। यह अरबी शब्द है जिसका अर्थ 'बुज़ुर्ग' होता है। मुहम्मद साहब के नाम के साथ लगाकर 'हज़रत मुहम्मद' कहा जाता है। पर अब यह शब्द भी हिन्दी-उर्दू में बहुत गिर गया है। 'तुम भी पूरे *हज़रत* हो' प्रयोग चलता है। इस प्रकार इसका अर्थ शरारती या शैतान आदि होता है। हिन्दी का '*चचा*' शब्द भी इसी तरह गिर गया है।

फ़ारसी का एक शब्द '*मेहतर*' है। इसका अर्थ बुज़ुर्ग या बेहतर

१. अबूबक्र, उमर तथा उसमान आदि।

होता है। '*मेहतर*' 'जिब्रील' कहा जाता है, पर हिन्दी में '*मेहतर*' पाख़ाना साफ़ करने वाले को कहते हैं। इस शब्द की अवनति तो सीमा पार कर गई है। '*हलालख़ोर*' शब्द भी इसी प्रकार का है। '*हलाल*' शब्द अरबी का है। इसका अर्थ वाजिब या 'शरअ' के अनुकूल होता है। यह शब्द 'हराम' का उलटा है। 'ख़ोर' शब्द फ़ारसी का है, जिसका अर्थ खाने वाला होता है। इस प्रकार '*हलालख़ोर*' वह हुआ जो वाजिब कमाई खाए। इस दृष्टि से भला कौन '*हलालख़ोर*' होना न चाहेगा। पर आजकल '*हलालख़ोर*' का हिन्दी-उर्दू में अर्थ है 'कूड़ा तथा पाख़ाना आदि साफ़ करने वाला भंगी'। इस शब्द में भी बहुत पतन हुआ है। यद्यपि यह भी अशुद्ध नहीं है कि शायद '*हलालखोर*' ही संसार में सबसे अधिक हलाल की कमाई खाते हैं। '*दीवान*' राजा के मन्त्री को कहते थे, पर अब तो हेड सिपाही भी '*दीवान*' कहलाता है।

'*गँवार*' का अर्थ है गाँव का रहने वाला। पर अब '*गँवार*' का अर्थ हो गया है मूर्ख या उजड्ड आदि। '*अहीर*' एक जाति का नाम है, पर अब उसका भी अर्थ '*उज़बक*' जाति की भाँति ही '*गँवार*' आदि लिया जाता है। *बाम्हन, कायथ, भूमिहार* आदि जातियों के नाम भी अब गिर गए हैं। *बाम्हन* का अर्थ *पोंगा*, *कायथ* का *धूर्त* तथा *भूमिहार* का *चालाक* एवं *चाँख* आदि होने लगा है। बालियाटिक (=बालिया का रहने वाला) का अर्थ अब मूर्ख हो गया है। शिकारपुरी (शिकारपुर का रहने वाला) का भी बालियाटिक-सा ही अर्थ लिया जाता है।

भास के समय में '*महाब्राह्मण*' का अर्थ 'उच्च कोटि का विद्वान् ब्राह्मण' था। आप्टे ने भी इसका पहला अर्थ विद्वान् पण्डित ही दिया है। पर अब तो '*महाब्राह्मण*' उस करटहा ब्राह्मण को कहते हैं जो श्राद्ध आदि का निकृष्ट दान लेता है। अन्य ब्राह्मण इसको छूना तक नहीं पसन्द करते।

'*भद्र*' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'भद्र पुरुष' आदि के रूप में

भला या अच्छा होता है। '*भद्र*' शब्द ने विकसित होकर दो रूप धारण किये हैं। एक तो '*भद्दा*' जिसका अर्थ 'बुरा' तथा 'कुरूप' आदि होता है और दूसरा '*भोंदू*' जिसका अर्थ 'मूर्ख' होता है। '*भद्र*' के '*भद्दा*' और '*भोंदू*' दोनों ही रूपों में उसकी कितनी अवनति हुई है, कहने की आवश्यकता नहीं।

अंग्रेज़ी का *कान्स्टेबल* (Constable) शब्द मूलतः 'अफ़सर' का अर्थ रखता है। पुरानी अंग्रेज़ी में उच्चतम ओहदों के अफ़सरों के लिए इसका प्रयोग होता था। मध्यकाल में इसका अर्थ 'किले का रक्षकाध्यक्ष' होने लगा। अब तो यह और भी गिर गया है। अंग्रेज़ी तथा हिन्दी दोनों ही में पुलिस के सिपाही के लिए इसका प्रयोग होता है।

'*देवप्रियः*' एक प्रयोग है जिसका अर्थ 'देवताओं का प्यारा' होता है। यह शिव का एक विशेषण समझा जाता था। इसी का एक रूप '*देवानां प्रियः*' है जिसका प्रयोग अशोक के लिए शिला-लेखों आदि पर मिलता है। बौद्ध-धर्म के पतन के बाद जब लोगों की धारणा इस धर्म के प्रति ख़राब हुई तो इस '*देवानां प्रियः*' प्रयोग का अर्थ बुरा हो गया। आज कोषों में इसका अर्थ मूर्ख मिलता है। 'काव्य प्रकाश' में एक स्थान पर आया है—

तेप्यतात्पर्यज्ञा देवानां प्रियाः।

'*जुगुप्सा*' शब्द का सम्बन्ध 'गुप्' धातु से है जिसका अर्थ छिपाना या गुप्त रखना आदि होता है। धीरे-धीरे छिपाई जाने वाली बात या चीज़ घृणित समझी जाने लगी और इस प्रकार '*जुगुप्सा*' अब 'घृणा' का पर्याय हो गया है।

महाराज (महाराजा से रसोइया), *बुरजुआ* (फ्रेंच शब्द है। पहले इसका अर्थ बड़ा आदमी था पर समाजवाद के प्रभाव से अब अर्थ बहुत गिर गया है।), *साहु* (मूल शब्द *साधु* है पर अब इसका अर्थ बनिया है।), *पनारा* (मूल शब्द सं० *प्रणाली* (शैली, रास्ता) है पर पनारा का अर्थ गन्दी नाली होता है।) तथा *लाटसाहब* (घमण्डी) आदि शब्द भी

शब्दों की अवनति के अच्छे उदाहरण हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही शब्द कुछ स्थलों पर तो अच्छा अर्थ देते हैं पर कुछ स्थलों पर बुरा। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—

उन्नत अर्थ	*अवनत अर्थ*
कठोर कुच	कठोर व्यक्ति
काली घटा	काला आदमी
मोटा आसामी	मोटी अक्ल
टेढ़ा बाल	टेढ़ा आदमी
मीठा पानी	मीठा बैल
सफ़ेद वस्त्र	सफ़ेद बाल

शब्दों की अवनति के सम्बन्ध में एक और बात द्रष्टव्य है। शरीर के जो अंग सबके सामने नहीं खोले जा सकते तथा जो कार्य सबके सामने नहीं किये जा सकते उनसे सम्बन्धित सर्वसामान्य में प्रचलित शब्द इतने अवनत या गिरे समझे जाते हैं कि उनका लोग उच्चारण भी नहीं करते। लिंग, गुदा, भग, कुच, पाख़ाना, पिशाब, पाख़ाना करना, सम्भोग करना आदि के लिए सर्वसामान्य में, विशेषतः अशिक्षितों में, प्रचलित शब्दों की यही दशा है। उन्हें बहुत-से लोग तो अकेले में भी उच्चरित नहीं कर सकते। इन शब्दों की सर्वदा यही दशा नहीं थी। जब ये शब्द अशिक्षितों में प्रचलित न रहे होंगे तो इस समय की अपेक्षा अवश्य ही उन्नत रहे होंगे। आज के लिंग, गुदा, भग तथा सम्भोग करना आदि शब्द यदि सर्वसाधारण एवं अशिक्षितों में प्रचलित हो जायँ तो कल इनकी भी यही अवनत दशा होगी।

शब्दों की अवनति के सम्बन्ध में एक तीसरी बात यह भी है कि कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो अपने मूल रूप में तो उन्नत हैं पर विकृत रूप में अवनत हैं। '*गर्भिणी*' का अर्थ है गर्भवती। इसका प्रयोग मनुष्य या पशु किसी के लिए हो सकता है, पर गभिणी से ही

निकला शब्द *'गाभिन'* अपेक्षाकृत गिरा हुआ है और केवल पशुओं के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के कुछ शब्दों की सूची यहाँ दी जाती है—

मूल शब्द	*अर्थ या प्रयोग*	*विकृत शब्द*	*अर्थ या प्रयोग*
स्तन	स्त्री आदि का स्तन	थन	केवल गाय, भैंस या बकरी आदि का थन
स्थान	कोई स्थान	थान	घोड़ा या हाथी बाँधने का स्थान
प्रणाली	शैली, तरीका	पनारा, पनारी	गन्दी नाली
ब्राह्मण	योग्य पंडित	बाम्हन	निरक्षर, पोंगा
साधु	सज्जन, सन्त	साहु	बनिया, ठग
वार्ता	कथा-वार्ता के रूप में प्रयुक्त	बात	कोई भी अच्छी-बुरी बात
परीक्षक	इम्तहान लेने वाला, गुरु	पारखी	धातु तथा रत्न आदि को पहचानने वाला
पुंगव	होशियार	पोंगा	मूर्ख

शब्दों की यह अवनति सभी भाषाओं में मिलती है। अभी तक इस अवनति के दृष्टिकोण से शब्दों का नियमित अध्ययन सम्भवतः किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। मेरा अपना विश्वास है कि यदि किसी भी भाषा के गिरे शब्दों के पूरे इतिहास का उसके कारणों की खोज करते हुए विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो उन भाषा-भाषियों का समाज-मनोविज्ञान, उस समाज के विशेष वर्ग, धर्म, नीति या नियम के प्रति भावनाएँ तथा इस प्रकार की अन्य भी बहुत सी बातों का पता चलेगा, जिसके आधार पर किसी युग-विशेष की मनः-स्थिति स्पष्ट हो सकेगी जो उस युग की कला या साहित्य के समझने में बहुत सहायक होगी।

११ : : शब्द दुबले होते हैं

'दुबला' होने के दो अर्थ हैं। यह शब्द संस्कृत शब्द 'दुर्बल' से निकला है, अतः धात्वर्थ की दृष्टि से इसका अर्थ है 'बल में कम', पर प्रयोगतः यह 'मोटाई' में कम होने का अर्थ रखता है। 'आप दुबले हो रहे हैं' का अर्थ है 'आप मोटाई में कम हो रहे हैं।' मोटाई में कम होने पर आप पहले की अपेक्षा वातावरण में कम जगह घेरेंगे। इस प्रकार प्रयोगतः दुबले होने का अर्थ है अपेक्षाकृत कम जगह घेरना। शब्द भी अर्थ की दृष्टि से कभी-कभी पहले की अपेक्षा कम जगह घेरने लगते हैं, अतः उनकी इस दशा को 'दुबला होना' कहें तो अन्याय न होगा। एक उदाहरण इस बात को अधिक स्पष्ट कर देगा। 'जलज' शब्द का मूलतः अर्थ है 'जल में पैदा होने वाला'। इस प्रकार आरम्भ में जल में जन्मने वाले कमल, जोंक, सेवार, घोंघा, शंख आदि असंख्य चीज़ों का 'जलज' से बोध होता रहा होगा। 'जलजाजीव' शब्द, जिसका अर्थ 'मछली आदि पर अपनी जीविका चलाने वाला होता है, अब भी उस प्राचीन अर्थ की याद दिलाता है। पर आज 'जलज' शब्द केवल 'कमल' के लिए प्रयुक्त होता है। तुलसीदास जी लिखते हैं—

जलज जोंक जिमि गुण बिलगाहीं।

कहना न होगा कि उस विस्तृत अर्थ से, जिसमें जल में जन्मने वाली सभी चीज़ें आती थीं, यह शब्द केवल कमल का अर्थ (उनमें से एकमात्र) रखने लगा है, अतः निश्चय ही अर्थ की दृष्टि से यह कम

स्थान घेर रहा है और इस प्रकार यह दुबला हो गया है।

शब्दों के इस दुबलेपन को भाषा-विज्ञान की भाषा में 'अर्थ संकोच' कहते हैं। अंग्रेजी में इसका नाम Contraction of Meaning है। यह संकोच, सिकुड़ना या दुबलापन संसार की सभी भाषाओं में पाया जाता है। अर्थ-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् 'ब्रील' ने अपनी पुस्तक 'एस्से द सेमेण्टिक' में इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है कि जो भाषा जितनी ही समुन्नत होगी, उसके शब्दों में यह दुबलापन उतना ही अधिक मिलेगा। इसका कारण यह है कि सभ्यता के विकास के आरम्भ में मनुष्य का ध्यान मोटी-मोटी बातों या चीज़ों की ओर जाता है, जैसे जल में होने वाली सभी चीज़ों के लिए 'जलज' का प्रयोग किया गया तथा इस पर अपनी जीविका चलाने वाले को 'जलजाजीव'। पर बाद में जल के भीतर की विभिन्न वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हुआ तो यह 'जलज' संज्ञा किसी एक को देनी पड़ी तथा शेष के लिए और नाम बनाने पड़े। यही दशा 'मृग' की भी है। 'मृग' का प्राचीन अर्थ पशु है। इसी आधार पर पशुओं के राजा सिंह को 'मृगेन्द्र' या 'मृगराज' कहते हैं। 'मृगया' (शिकार) शब्द या 'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति' श्लोकांश भी उस प्राचीन अर्थ की ओर ही संकेत कर रहे हैं। पर बाद में जब बहुत से पशु अलग-अलग ज्ञात हुए और सभी को नाम देना पड़ा तो 'मृग' को 'हरिण' का वाचक माना गया तथा अन्य पशुओं को और नाम के दिये गए।

प्रसिद्ध संस्कृत शब्द 'गो' का अर्थ तो और भी विस्तृत था। 'गो' 'गम्' धातु से बना है, अतः मूलतः संसार में जो भी चलते हैं (मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर तथा तीर आदि) सभी 'गो' की संज्ञा के अधिकारी थे। आज भी कोषों में इसके गाय, बैल, किरण, जल, पशु, चाँद, हवा, सूर्य, दृष्टि तथा बाण आदि अनेक अर्थ दिये हुए हैं। पर अब यह बेचारा बहुत ही दुबला हो गया है और केवल 'गाय' के लिए प्रयुक्त होता है। शायद इतना दुबला होने पर कोई दूसरा रहता

तो मर जाता, पर यही एक ऐसा है जो कलेजे पर पत्थर रखकर अब तक भी चला जा रहा है।

ग्रीक भाषा का प्रसिद्ध शब्द '*बाइबल*' लीजिए। इसका मूल अर्थ है 'पुस्तक', पर अब दुबला होकर यह केवल ईसाइयों की धर्म-पुस्तक के लिए ही प्रयुक्त होता है। अब तो इसका नवीन अर्थ इतना प्रचलित हो गया है कि इसकी उस दशा का किसी को ध्यान भी नहीं है, जब यह अत्यन्त स्वस्थ और मोटा था अर्थात् इससे किसी भी पुस्तक का बोध हो सकता था। सत्य है वर्तमान के आगे भूत को कौन देखता है!

मूलतः 'धन' के आधार का नाम 'धान्य' है। पहले धन विशेषतः अन्न से मिलता था, अतः 'धान्य' का अर्थ अन्न-मात्र था, पर अब यह बेचारा दुबला हो गया है और '*धान*' (धान्य से निकला या विकसित) केवल एक अन्न के लिए प्रयुक्त होता है जिससे चावल निकलता है। अंग्रेजी का '*कॉर्न*' (Corn) शब्द भी इसी प्रकार का है। यों उसका अर्थ अन्न होता है पर अमेरिका का कभी प्रधान अन्न मक्का होता था, अतः वहाँ '*कॉर्न*' का अर्थ केवल मक्का होता है।

कुछ और उदाहरण लीजिए। 'ख' का अर्थ है आकाश और 'ग' का अर्थ है 'गमन करने वाला'; इस प्रकार '*खग*' वह है जो आकाश में गमन करे। इस दृष्टि से '*खग*' से सूर्य, चन्द्रमा, तारे, गण, हवाई-जहाज़, पक्षी, बाण तथा वायु आदि बहुत सी चीज़ों का बोध होता है। 'आप्टे' में ये अर्थ हैं भी। इसका अर्थ यह है कि कभी साहित्य में भी 'खग' शब्द इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता था। 'महाभारत' में वायु अर्थ में एक प्रयोग देखिए—

तमांसीव यथा सूर्यो वृक्षानग्निर्धनान्खगः।

अस्ताचल का एक पर्याय 'खगासन' मिलता है और यह इस बात की ओर संकेत करता है कि 'खग' का सूर्य अर्थ में भी प्रयोग होता था। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि नन्ददास

ने अपनी 'अनेकार्थ ध्वनि मंजरी' में लिखा है—

खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अंबुद, खग देव।
खग बिहंग हरि सुतरु तजि भज जड़ सेवल सेव॥

पर अब 'खग' का प्रयोग केवल 'पक्षी' के लिए होता है। इसका भी दुबलापन बड़ा दयनीय है।

'रसाल' का अर्थ है 'रस से पूर्ण'। इस दृष्टि से अंगूर, मुसम्मी और नींबू से लेकर रसभरी तक तथा रसगुल्ले से लेकर रसमलाई तक सभी 'रसाल' कहलाने के अधिकारी हैं। पर आज केवल 'आम' को ही 'रसाल' कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है। जहाँ एक ओर आम के लिए यह सौभाग्य की बात है 'रसाल' के लिए दुर्भाग्य है, क्योंकि उसे दुबला हो जाना पड़ा है।

जिसका भरण-पोषण किया जाय वही 'भार्या' है। इस दृष्टि से प्रत्येक छोटी दुधमुँही बच्ची इस शब्द की सबसे बड़ी अधिकारिणी है। पर आज 'भार्या' शब्द केवल पत्नी के लिए प्रयुक्त होता है। यह बात दूसरी है कि आज की कुछ भार्याएँ अपने पति का ही भरण-पोषण करती हैं और इस दृष्टि से न्यायतः ऐसे पति ही 'भार्या' हैं।

श्रद्धा से किया गया प्रत्येक कार्य 'श्राद्ध' है, पर अब केवल मरे हुए व्यक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया को ही 'श्राद्ध' कहते हैं। आज यदि किसी को श्रद्धा से आमन्त्रित करें और उसके आने पर कहें कि "हम लोग आपका 'श्राद्ध' कर रहे हैं" तो वह शायद बिगड़ खड़ा होगा।

'वेदना' का सम्बन्ध संस्कृत की 'विद्' धातु से है, जिसका अर्थ 'जानना' होता है। इस प्रकार सुख का ज्ञान और दुःख का ज्ञान दोनों 'वेदना' में निहित हैं। पर आज केवल दुःख के ज्ञान के लिए 'वेदना' का प्रयोग होता है। प्रसाद लिखते हैं—

आह! वेदना मिली विदाई।

वत्स, बाछा, बछेड़ा, पाड़ा, छौना, मेमना, शावक, पोआ, पिल्ला तथा चुज्जा या चूज़ा सभी का मूलतः अर्थ बच्चा है पर अब वत्स

मनुष्य के बच्चे को, *बाछा* गाय के बच्चे को, *बछेरा* घोड़े के बच्चे को, *पाड़ा* भैंस के बच्चे को, *छौना* हिरन के बच्चे को, *मेमना* भेड़ के बच्चे को, *शावक* पशु तथा पक्षी के बच्चे को, *पोत्रा* साँप के बच्चे को, *पिल्ला* कुत्ते के बच्चे को तथा *चूज़ा* मुर्गी के बच्चे को कहते हैं। कहना न होगा कि ये सभी दुबले हो गए हैं।

मूलतः '*घृत*' उसे कहते हैं जिससे सींचा जाय। इसी कारण कोषों[1] में '*घृत*' का अर्थ 'घी' के साथ-साथ 'पानी' भी मिलता है। पर आज '*घृत*' केवल घी के लिए प्रयुक्त होता है।

'*मुर्ग़*' फ़ारसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ 'पक्षी' होता है। शुतुरमुर्ग़ (जिसका अर्थ 'वह पक्षी जो ऊँट—शुतुर—की तरह हो' होता है) में '*मुर्ग़*' का यह अर्थ स्पष्ट है, पर अब '*मुर्ग़*' एक विशेष पक्षी के लिए प्रयुक्त होने लगा है जिसे अंग्रेज़ी में Cock तथा संस्कृत में 'कुक्कुट' कहते हैं।

'*रदन*' का अर्थ है वह चीज़, जिससे किसी चीज़ को फाड़ा जाय। इस दृष्टि से 'कुल्हाड़ी' और 'आरा' आदि '*रदन*' कहलाने के अच्छे अधिकारी हैं, पर अब केवल दाँत को '*रदन*' कहते हैं।

जो व्यक्ति 'हलवा' बनाये वही '*हलवाई*' है। सभी घरों में कभी-न-कभी 'हलवा' बनता है, अतः प्रायः सभी स्त्रियाँ 'हलवाई' हैं। पर आज तो केवल मिठाई बनाने या बेचने वाली एक उपजाति को ही '*हलवाई*' कहते हैं। विचित्रता तो यह है कि ये '*हलवाई*' कहलाने वाले पूरी, कचौरी, लड्डू, जलेबी, खुर्मा, इमरती, गुलाबजामुन आदि बहुत-सी चीजें बनाते हैं, पर 'हलवा' शायद ही कभी बनाते हों।

'*इन्सान*' का सम्बन्ध अरबी शब्द 'निसियान' (भूलना) से है। अर्थात् '*इन्सान*' वह है जो भूल करे। इस दृष्टि से सभी जीव (एक खुदा को छोड़कर) 'इन्सान' हैं। कुछ लोग 'इन्सान' का सम्बन्ध अरबी शब्द उन्स (प्रेम) से मानते हैं। अर्थात् *इन्सान* वह है जो प्यार करे।

१. देखिए 'संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी'—आप्टे।

इस दृष्टि से तो क्या चीता, क्या हाथी, क्या मनुष्य और क्या भगवान् (जो प्रेम के भण्डार हैं) सभी 'इन्सान' हैं, पर आज 'इन्सान' केवल आदमी को कहते हैं। कभी-कभी तो उस आदमी को ही 'इन्सान' कहते हैं, जिसमें 'इन्सानियत' हो।

'विश्' का प्राचीन अर्थ मनुष्य-मात्र है। वेदों में यह शब्द सभी के लिए आया है। उससे बना 'वैश्य' का भी अर्थ वेदों में सामान्य जनता लिया गया है। 'वैश्या' (जो 'वैश्य' का स्त्रीलिंग है तथा जिसका अर्थ सामान्या या सामान्य स्त्री होता है, जो जनता के लिए हो) शब्द आज भी उस पुराने अर्थ की याद दिलाता है। पर आज 'वैश्य' का अर्थ केवल बनिया होता है।

संक्षेप में कुछ और उदाहरण लीजिए। पुर (शरीर) में रहने वाली सभी आत्माएँ 'पुरुष' हैं, पर केवल मर्द (स्त्री नहीं) के लिए इसका प्रयोग होता है। जो बढ़े वह 'द्रुम' है, पर आज केवल लता या पेड़ आदि को ही द्रुम कहते हैं। 'दुहिता' वह है जो गाय दूहे। पर आज इसका सीधा-सादा अर्थ लड़की है। सच पूछा जाय तो आज ग्वालों को 'दुहित' या 'दुहिता' कहना चाहिए। 'ननद' (ननान्द) वह है जो भौजाई को सताए। इस दृष्टि से वे देवर भी तो 'ननद' हैं जो भौजाई को सताते हैं, पर आज केवल पति की बहन ही 'ननद' है। 'वह्नि'[1] वह है जो वहन करे, ढोए या ले जाय। इस दृष्टि से रेल, मोटर, साइकिल तथा इक्के आदि सभी 'वह्नि' हैं और आग से ज्यादा इस नाम के अधिकारी हैं, पर आज केवल आग को 'वह्नि' कहते हैं। 'कष्ट' का धातु की दृष्टि से अर्थ है 'वह जिससे परीक्षा हो।' पर इस दृष्टि से इम्तहान ही सबसे बड़ा 'कष्ट' है तथा और भी बहुत सी चीज़ें कष्ट हैं, पर आज केवल 'दुःख' को कष्ट कहते हैं। मज़ा तो यह है कि बहुत से कष्ट ऐसे भी हैं जिनसे परीक्षा का कोई सम्बन्ध भी नहीं है। 'चार्वाक'

१. आग हवन की हुई वस्तुओं को देवताओं तक ले जाती थी, अतः कर्मकांडियों ने इसे 'वह्नि' की संज्ञा दी।

वह है जिसकी बोली मीठी हो। पर आज केवल अनीश्वरवादियों को 'चार्वाक' कहते हैं। यद्यपि सभी कभी-न-कभी मीठी बोली बोलते हैं, अतः इस दृष्टि से सभी 'चार्वाक' हैं।

शब्दों के दुबले होने में कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि मूल शब्द तो अपने प्राचीन अर्थ में प्रयुक्त होता है पर उससे विकसित उसी भाषा, उसी भाषा की किसी बोली या किसी अन्य भाषा में प्रयुक्त शब्द दुबला हो जाता है। 'मूल' शब्द हिन्दी में अपने मूल अर्थ 'जड़' के लिए प्रयुक्त होता है।' पर उसी से विकसित 'मूली' शब्द केवल एक तरकारी-विशेष की जड़ के लिए प्रयुक्त होता है। 'कीट' शब्द का अर्थ रेंगने वाला जीव है। हिन्दी में आज भी इसका प्रायः यही अर्थ है, पर भोजपुरी में इसी से विकसित शब्द 'कीरा' केवल साँप के लिए प्रयुक्त होता है। 'गंध' के सम्बन्ध में भी यही बात है। 'गंध' का अर्थ है महक, जिसमें अच्छी और बुरी (दुर्गन्ध और सुगन्ध) दोनों सम्मिलित हैं, पर अवधी में 'गंधाना' का अर्थ केवल 'बदबू करना' होता है। इसी प्रकार 'वास' का अर्थ भी 'महक' है, पर भोजपुरी में 'वसाना' का अर्थ बदबू करना होता है। 'गंधाना' की भाँति ही यह भी दुबला हो गया है। संस्कृत का प्रसिद्ध ज़हरवाची शब्द 'विष' है। आज भी संस्कृत या हिन्दी आदि में 'विष' का अर्थ ज़हर ही होता है, पर अरबी में पहुँचकर यह शब्द 'बेश़'हो गया है और वहाँ इसका प्रयोग सामान्यतः ज़हर के लिए न होकर एक ख़ास ज़हर के लिए होता है।।

'ज़नाना' शब्द फ़ारसी का है जिसका अर्थ 'औरत' या 'औरतों का' होता है। किसी भी चीज़ के लिए इसका प्रयोग कर सकते हैं। ज़नाना महल, ज़नानी बोली, ज़नाना कपड़ा, ज़नानी चाल तथा ज़नानी लिखावट आदि। पर यही 'ज़नाना' शब्द अंग्रेज़ी में जाकर 'Zenana' हो गया है और वहाँ इसका अर्थ केवल ज़नाना महल या 'ज़नानख़ाना' होता है।

शब्दों के दुबले होने के विषय में एक और बात भी द्रष्टव्य है। कभी-कभी ऐसे भी अर्थ-संकोच देखने में आते हैं जहाँ एक ही शब्द

संदर्भ विशेष में अपना विशेष संकुचित या दुबला अर्थ रखता है और यों विस्तृत अर्थ। यों कोई भी गोल वस्तु '*गोली*' कही जा सकती है, पर सिपाही की '*गोली*', दर्ज़ी की '*गोली*', खिलाड़ी की '*गोली*' तथा वैद्य की '*गोली*', इन सबमें 'गोली' का अर्थ सीमित हो गया है। '*क़लम*' शब्द भी इसी प्रकार का है। शिशु-कक्षा के विद्यार्थी का '*क़लम*' (सरकंडे का कलम), मिडिल के विद्यार्थी का '*क़लम*' (होल्डर या निब), एम० ए० के विद्यार्थी का '*कलम*' (फाउण्टेनपेन), माली का '*कलम*' (पेड़ों को कलम करना) तथा नाई का '*कलम*' (कान के पास का बाल सीधे काटना)—ये सभी भिन्न और सीमित हैं। यों 'कलम' का धात्वर्थ है 'वह जो काटा जाय।' यह बात दूसरी है कि 'बात' भी काटी जाती है, पर उसे कलम कहने की धृष्टता शायद कभी किसी ने नहीं की। साड़ी तथा नदी के '*किनारे*', अन्धे, चरवाहे तथा जादूगर का '*डण्डा*', धनुर्धर तथा नदी का '*तीर*', ये सब भी इस वर्ग के अच्छे उदाहरण हैं।

किसी के दुबले होने पर प्रसन्न होना या किसी के दुबले होने की कामना करना तो नीचता होगी, पर जैसा कि ऊपर ब्रील का मत देते हुए कहा जा चुका है कि जो भाषा जितनी ही समुन्नत होगी उसमें शब्दों के दुबले होने के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे, हम यहाँ अन्त में नीच की संज्ञा स्वीकार करते हुए भी राष्ट्रभाषा के हितार्थ कामना कर सकते हैं कि हिन्दी के अधिकाधिक शब्द दुबले हों और इस प्रकार वह अधिकाधिक समुन्नत हो।

१२ : : शब्द घिसते हैं

जीवन के उत्थान-पतन, सुख-दुःख एवं फूल-काँटों का सामना करते-करते आदमी वृद्ध हो जाता या घिस जाता है। शब्द भी इसी प्रकार घिस जाते हैं।

'*उपाध्याय*' हमारा परिचित शब्द है। यों इसका अर्थ शिक्षक, आचार्य या गुरु होता है, पर, तिवारी, पांडे, द्विवेदी, चतुर्वेदी और पाठक आदि की भाँति ब्राह्मणों की यह एक पूँछ भी है। इसी भाँति ब्राह्मणों की दो और पूँछें '*ओझा*' तथा '*झा*' भी हैं। भाषा-शास्त्रियों का कहना है कि '*उपाध्याय*' शब्द ही घिसकर '*ओझा*' हुआ है और फिर '*ओझा*' घिसकर '*झा*' हो गया है। बेचारा कहाँ तो अच्छा-ख़ासा साढ़े चार अक्षरों का जवान था और 'झा' के रूप में एक अक्षर का बौना हो गया है !

शब्दों के घिसने में कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है। अंग्रेज़ी में इसे भाषा-शास्त्रियों ने Elision कहा है। लोप सामान्यतः तीन प्रकार का होता है। (१) स्वर लोप, (२) व्यंजन लोप तथा (३) अक्षर (syllable) लोप। पुनः इन तीनों के तीन-तीन भेद हो सकते हैं। (१) आदि लोप, (२) मध्य लोप, (३) अन्त लोप। इस प्रकार लोप को कुल नौ वर्गों में रखा जा सकता है।

(१) आदिस्वर लोप—इसमें आरम्भ के स्वर के लुप्त हो जाने के कारण शब्द घिस जाता है या उसकी लम्बाई कम हो जाती है। इसे

अंग्रेज़ी में aphesis कहते हैं—जैसे '*अनाज*' से '*नाज*', '*अहाता*' से '*हाता*', '*एकादश*' से '*ग्यारह*', '*अरघट्ट*' से '*रहट*' तथा '*आभ्यन्तर*' से '*भीतर*' आदि।

(२) मध्य स्वर लोप—इसमें बीच के स्वर का लोप हो जाता है। अंग्रेज़ी में इसे syncope कहते हैं। उदाहरणतः '*शाबाश*' से '*साबस*' तथा अंग्रेज़ी में *Storey* से *story* आदि। हिन्दी में तो इधर बहुत से शब्दों में मध्य स्वर लोप हो गया है, यद्यपि अभी लोग लिखते नहीं। बोलने की दृष्टि से '*बलदेव*' का '*बल्देव*', '*कृपया*' का '*कृप्या*' तथा '*तरबूज़*' का '*तर्बूज़*' आदि द्रष्टव्य हैं।

(३) अन्त स्वर लोप—इसमें शब्दान्त का स्वर लुप्त हो जाता है। अंग्रेज़ी का *bomb* शब्द फ्रेंच *bombe* से आया है। इसमें '*e*' हट गई है। हिन्दी के तो आज के सभी शब्द, जिनके अन्त में 'अ' था, इसके उदाहरण बन गए हैं। हम लोग '*राम*' न कहकर '*राम्*' कहते हैं। इसी प्रकार *मोहन्*, *दाल्*, *हम्*, *आप्* तथा *पढ़्* आदि।

(४) आदि व्यंजन लोप—इसमें आरम्भ के व्यंजन का लोप हो जाता है। '*स्थान*' से *थान*, तथा '*श्मशान*' से *मसान*। अंग्रेज़ी में बहुत-से शब्दों में उच्चारण की कठिनाई से यह लोप हो गया है, यद्यपि अभी तक लोग लिखते पुरानी ही तरह से हैं। हाँ, अमरीका में अवश्य इस प्रकार के कुछ अक्षरों को लिखने में भी छोड़ा जा रहा है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं—

लिखित रूप	उच्चरित रूप	लिखित रूप	उच्चरित रूप
Knife	nife	*Know*	no
Gnaw	naw		

(५) मध्य व्यंजन लोप—इसमें बीच के व्यंजन का लोप हो जाता है। उदाहरणतः '*सूची*' से '*सूई*', '*घर-द्वार*' से '*घर-बार*' तथा '*कोकिल*' से '*कोइल*' (कोयल) आदि। प्राकृत भाषाओं में इस प्रकार के बहुत उदाहरण मिलते हैं। नमूने के लिए '*वचन*' से '*वअण*' देखा जा सकता

है। ग्रामीण हिन्दी भी इसके उदाहरणों से भरी पड़ी है। '*भूमिहार*' से '*भुइँहार*' या '*उपवास*' से '*उपास*' आदि। अंग्रेज़ी में भी वाल्क (walk) के उच्चरित रूप '*वाक*', 'टाल्क' (talk) के उच्चरित रूप '*टाक*' में यही बात है।

(६) अन्त व्यंजन लोप—इसमें अन्त का व्यंजन लुप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए संस्कृत '*निम्ब*' से हिन्दी '*नीम*' या '*जीव*' से '*जी*' आदि देखे जा सकते हैं।

(७) आदि अक्षर लोप—इसमें आरम्भ के अक्षर (syllable) का लोप हो जाता है। जैसे '*शहतूत*' से '*तूत*'। इसे अंग्रेज़ी में apheresis कहते हैं।

(८) मध्य अक्षर लोप—इसमें मध्य के अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे '*वरुजीवी*' से '*बरई*', '*राजपुत्र*' से '*राउर*' तथा '*फलाहारी*' से '*फलारी*' आदि।

(९) अन्त अक्षर लोप—इसमें अन्तिम अक्षर का लोप हो जाता है। अंग्रेज़ी में इसे apocope कहते हैं। उदाहरण के लिए '*मौक्तिक*' से '*मोती*', '*माता*' से '*माँ*' तथा '*भ्रातृजाया*' से '*भावज*' आदि।

इन नौ के अतिरिक्त एक और लोप होता है जिसे समाक्षर लोप कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे haplologyकहते हैं। इसमें दो वर्ण यदि एक स्थान पर रहते हैं तो उच्चारण की सुविधा के लिए एक का लोप हो जाता है। जैसे '*नाककटा*' से '*नकटा*' तथा '*Parttime*' से '*Partime*' आदि।

शब्दों के घिसने या छोटे होने का यह तो शास्त्रीय विवरण था। अब कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

आधा 'स' से आरम्भ होने वाले शब्दों पर जाने कौन ग्रह सवार था, सब बेचारे घिसकर छोटे हो गए। '*स्थाली*' '*थाली*' रह गई है, '*स्थल*' बेचारा '*थल*' हो गया है और '*स्थाणु*' का केवल '*थूनी*' शेष है। इसी प्रकार संस्कृत के बहुत से संख्यावाची शब्द हिन्दी में घिसकर बहुत छोटे हो गए हैं। इनकी तो एक बहुत बड़ी सूची दी जा सकती है—

संस्कृत	हिन्दी
चत्वारि	चार
ऊनविंशति	उन्नीस
त्रयोविंशति	तेईस
षट्त्रिंशत्	छत्तीस
उनपंचाशत	उंचास
एकोनाशीति	उनासी

दो पहियों की गाड़ी होने के कारण *'साइकिल'* का पहला नाम *'बाइसाइकिल'* या *'बाइसिकिल'* था। बाद में घिसकर यह *'साइकिल'* रह गया। अब तो यह *'बाइक'* होकर और भी छोटा हो गया है। *'अखवाट'* बेचारा दिन-रात कुश्ती, कसरत और पहलवानों के साथ में रहता है, फिर भी मोटा होने की कौन कहे, इसका शरीर उलटे-घिसकर *'अखाड़ा'* हो गया है। *'उपानह'* का घिसकर *'पनही'* होना तो स्वाभाविक है, क्योंकि सभी इसे पैरों तले रगड़ते हैं। *'शाटिका'* और *'अधोवस्त्र'* रोज़ शायद धोए जाने के कारण घिसकर *'साड़ी'* और *'धोती'* हो गए हैं। *'आरात्रिक'* का *'आरती'*, *'अफ़यून'* का *'अफ़ीम'* और *'अफ़ीम'* का *'आफू'*, *'इलायची'* का *'लाची'*, *'अनध्याय'* का *'अंझा'*, *'अक्षय तृतीया'* का *'आखा तीज'*, *'अंगरक्षक'* का *'अँगरखा'* और *'अँगरखा'* का *'अंगा'* तथा *'मृत्तिका'* का *'मिट्टी'* भी इसके अच्छे उदाहरण हैं।

शब्दों का इस प्रकार घिसकर छोटा होना सभी भाषाओं में पाया जाता है। इसके कई कारण हैं। कभी-कभी तो उच्चारण की सुविधा के लिए ही शब्द घिस जाते हैं। *'स्थाणु'* का *'थूनी'*, *'स्थाली'* का *'थाली'* या *'क्नाइफ़'* knife का उच्चारण ही इस दृष्टि से *'नाइफ़'* इसीलिए हुआ है। शालिग्राम के पत्थर नदी में चलते-चलते घिसकर चिकने तथा सुन्दर हो जाते हैं। इसी प्रकार शब्द भी घिसकर चिकने तथा सुन्दर हो जाते हैं। संस्कृत का *'अग्रहायण'* शब्द घिसकर हिन्दी में *'अगहन'* हो गया है। दोनों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि एक कुडौल और

ऊबड़-खाबड़ है तो दूसरा सुडौल। इस प्रकार हम देखते हैं कि घिसने से भाषा में कोमलता आती है और उसकी 'रवानी' में वृद्धि हो जाती है। इसी दृष्टि से प्राकृत वाले प्राकृत को संस्कृत से कोमल कहते थे।

कभी-कभी संक्षेप के लिए जान-बूझकर हम लोग शब्दों को घिस देते हैं या काटकर छोटा कर देते हैं। आजकल समय की कमी और व्यस्त जीवन के कारण यह प्रवृत्ति और बढ़ गई है। यदि '*रामगोपाल सिनहा*' कहना हो तो '*आर० जी० सिनहा*', '*रा० गो० सिनहा*' या केवल '*सिनहा*' कहकर हम काम चलाते हैं। *यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका*' का '*यू० एस० ए०*', '*उत्तर प्रदेश*' का '*यू० पी०*', '*मध्य-प्रदेश*' का '*सी० पी०*', '*पाकिस्तान-भारत*' का '*पाक-भारत*' '*यूरोप-एशिया*' का '*यूरेशिया*' तथा '*भारत-यूरोपीय*' का '*भारोपीय*' आदि इसके प्रचलित उदाहरण हैं।

ये संक्षेप तो व्यक्तिवाचक नामों के सम्बन्ध में हैं। जातिवाचक में भी इसके उदाहरण मिल जाते हैं। '*रेल*' रेलगाड़ी की लाइन या पटरी को कहते हैं। '*रेल*' पर चलने के कारण ट्रेन को '*रेलगाड़ी*' कहते हैं, पर, अब '*रेलगाड़ी*' को संक्षेप करके केवल '*रेल*' या '*गाड़ी*' कहने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। इसी प्रकार '*तार की खबर*' के लिए अब हम केवल '*तार*' कहकर काम चलाते हैं। हाथी का पुराना नाम '*हस्तिन् मृग*' (हाथ वाला जानवर) है। बाद में इसका '*मृग*' शब्द टूटकर अलग हो गया और '*हस्तिन्*' ही हाथी के लिए प्रयुक्त होने लगा। '*रेलवे स्टेशन*' से '*स्टेशन*', '*मोटरकार*' से '*कार*' या '*मोटर*', '*कैपिटल सिटी*' से '*कैपिटल*' तथा '*पोस्टल स्टैंप*' से '*स्टैंप*' भी इसके अच्छे उदाहरण हैं।

इस प्रकार शब्द कभी तो भाषा के प्रवाह में स्वयं घिसकर छोटे हो जाते हैं और कभी-कभी बोलने वाले अपनी सहूलियत के अनुसार घिसकर या काटकर उन्हें छोटा कर लेते हैं। शब्दों का इस प्रकार घिसा-कटा रूप भाषा के सौन्दर्य तथा उसके प्रवाह आदि की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

१३ : : शब्द मरते हैं

'घरा को प्रमान यही तुलसी, जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना'।

—तुलसी

संसार में जो पैदा होता है, मरता है। शब्द भी इसके अपवाद नहीं। वे भी पैदा होते हैं और मरते हैं। प्रत्येक भाषा का एक अपना 'शब्द-समूह' होता है। यह सर्वदा एक स्थिति में नहीं रहता। इसमें हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं—

१. नवीन शब्दों का आगमन

२. प्राचीन शब्दों का लोप

पहला कारण नवीन शब्दों का आगमन है। आगमन भी दो प्रकार से होते हैं। कुछ शब्द तो दूसरी भाषाओं से चले आते हैं, जिन पर संक्षेप में 'शब्द चलते हैं' शीर्षक अध्याय में विचार किया जा चुका है। कुछ शब्द बनते, बनाये जाते या पैदा होते हैं, जिन पर 'शब्द जनमते हैं' शीर्षक अध्याय में विचार किया गया है। शब्द-समूह में परिवर्तन का दूसरा कारण 'प्राचीन या प्रचलित शब्दों का लोप' है। यही शब्दों का 'मरना' है। जिस शब्द का लोप हो जाता है या जिसका प्रयोग बन्द हो जाता है वह मर जाता है।

शब्दों का मरना दो प्रकार का होता है। कभी-कभी तो शब्द सचमुच मर जाते हैं। आशय यह है कि बोल-चाल और साहित्य से तो निकल ही जाते हैं, कोषों में भी उनका नाम-निशान नहीं रह जाता।

इस प्रकार हम उन्हें पूर्णतः भूल जाते हैं। वैदिक काल के जाने कितने प्रयुक्त शब्दों का आज हमें बिलकुल पता नहीं है। अब इस प्रकार की मृत्यु केवल ऐसे शब्दों की होती है जो केवल बोल-चाल में रहते हैं, क्योंकि साहित्य में प्रयुक्त शब्द तो पुस्तकों में आ जाने के कारण प्रयोग में न रहने पर भी अपनी निशानी छोड़ जाते हैं, पर दूसरी ओर बोल-चाल के शब्द जो साहित्य में नहीं आ पाते, बोल-चाल से निकलने पर सर्वदा के लिए लुप्त हो जाते हैं और उनकी यथार्थतः मृत्यु हो जाती है।

शब्दों का दूसरे प्रकार का 'मरना' उस समय होता है जब शब्द बोल-चाल से निकलकर केवल साहित्य में, या साहित्य से निकलकर केवल कोषों में रह जाते हैं। इस मृत्यु को आंशिक मृत्यु कह सकते हैं।

शब्दों का लोप (या उनकी मृत्यु) कई कारणों से होता है। कुछ प्रधान कारण यहाँ देखे जा सकते हैं—

क. रीतियाँ और कर्मों का लोप

समाज परिवर्तनशील है। सर्वदा एक प्रकार के कार्य नहीं होते और न सर्वदा सामाजिक रीतियाँ ही एक-सी रहती हैं। ऐसी दशा में जिन कर्मों या रीतियों का लोप हो जाता है उनसे सम्बन्धित शब्द भी प्रयोग में न आने के कारण लुप्त हो जाते हैं। वैदिक समाज में यज्ञ का बहुत प्रचलन था, आज उसका प्रचलन नहीं है तो उसकी शब्दावली से हम बिलकुल अपरिचित हो गए हैं। इस प्रकार आज वे शब्द मर गए हैं। यह मरना उसी प्रकार का है जैसे प्रयोग में न आने वाली हिट्टाइट, संस्कृत या प्राकृत आदि भाषाएँ मृत कही जाती हैं।

आज यहाँ खेती हल-बैल से हो रही है तो हल के साथ 'कानी', 'जुवाठ', 'नाधा', 'पैना' आदि बहुत-से शब्द प्रचलित हैं। यदि थोड़े दिन में ऐसा युग आए, जिसकी आशा भी है कि रूस या अमरीका आदि की भाँति ट्रैक्टर से खेती होने लगे तो उपर्युक्त शब्द अप्रयुक्त होने के कारण स्वभावतः लुप्त हो जायँगे और उनके स्थान पर ट्रैक्टर आदि से

सम्बन्धित अन्य शब्द प्रचलित हो जायँगे।

ख. रहन-सहन में परिवर्तन

रहन-सहन में परिवर्तन के कारण भी शब्दों को मरना पड़ता है, क्योंकि इस परिवर्तन के कारण बहुत-सी पुरानी वस्तुओं (कपड़ों तथा अन्य रहन-सहन की चीज़ों) से हमारा सम्पर्क छूट जाता है और उनका स्थान नवीन चीज़ें ले लेती हैं। बिजली के पूर्ण प्रचार के बाद चिराग़, लैंप, दीपक को निश्चित ही मरना पड़ेगा। गड़ारा, बहली, रथ, बैलगाड़ी, और इक्के आदि भी धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। मोटर और साइकिल की तुलना में उनकी हार निश्चित ही है; और भी इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण लिये जा सकते हैं।

ग. अश्लीलता

गुप्तांगों के नाम तथा उनसे सम्बन्धित विसर्जन या मैथुन के शब्द भी सर्वसाधारण में प्रचलित होने पर सभ्य-समाज से बहिष्कृत हो जाते हैं। आज सभ्य-समाज में लिंग, भग, गुदा, सम्भोग, पेशाब करना, पाखाना होना, आबदस्त लेना, स्तन तथा अण्डकोष आदि शब्द तो चलते हैं, पर इनके ही अन्य बहुत से पर्याय ऐसे हैं जिनको केवल निम्न स्तर के अशिक्षित लोग ही प्रयुक्त करते हैं। पढ़े-लिखे या उच्चस्तर के लोग तो उनका नाम अकेले में भी नहीं ले सकते। इस प्रकार उच्च स्तर के या शिक्षा के संसार में इन शब्दों की मृत्यु हो गई है। १० वर्ष में यदि यहाँ की शत-प्रतिशत जनता शिक्षित हो जाय तो ये शब्द निम्न स्तर के वातावरण से भी निकाल बाहर किये जायँगे और उस दशा में इनकी पूरी मृत्यु हो जायगी।

घ. शब्दों का घिसना

घिसने से भी शब्दों का प्रयोग समाप्त हो जाता है और वे मर जाते हैं। यह घिसना दो प्रकार का होता है। कुछ शब्द तो ध्वनि की दृष्टि से घिसते हैं और कुछ अर्थ की दृष्टि से।

ध्वनि की दृष्टि से घिसने वाले शब्द जब बहुत छोटे हो जाते हैं तो

प्रायः उनका प्रयोग छूट जाता है। '*उपाध्याय*' शब्द घिसकर '*झा*' हो गया है। अब यदि थोड़ा भी यह शब्द और घिस जाय तो इसका जीवित रहना असम्भव हो जायगा।

अर्थ की दृष्टि से घिसना कुछ विशिष्ट प्रकार का होता है। बहुत प्रयोग के कारण कभी-कभी शब्द अपने ठीक अर्थ को व्यक्त नहीं कर पाते। 'सज्जन' का अर्थ था सत् + जन = अच्छा आदमी, पर प्रयोगाधिक्य के कारण अब सज्जन की आन्तरिक शक्ति प्रायः कम हो गई है; अतः कहा जाता है वह 'सज्जन आदमी' है। कोई भी शब्द आरम्भ में जब प्रचलित होता है तो उसकी शक्ति बहुत अधिक रहती है, पर धीरे-धीरे वह कम होती जाती है। 'क्रान्ति', 'संस्कृति', 'सभ्यता' आदि शब्द इधर बीसवीं सदी में इतने प्रयुक्त हुए हैं कि अब इनमें अधिक व्यंजकता नहीं रह गई है। अभी इनके लुप्त होने या मरने का भय नहीं है, पर इस प्रकार भी शब्द समाप्त होते हैं।

ङ. दो एकजातीय शब्दों का रूपसाम्य

कभी-कभी एक ही भाषा के दो शब्द घिसकर एक हो जाते हैं तो प्रायः एक का लोप हो जाता है। तुलसी के समय तक कच्चे के अर्थ में '*आम*' शब्द का प्रयोग होता था, पर उस समय तक संस्कृत का 'आम्र' भी '*आम*' हो चुका था, अतः 'आम के फल' के अर्थ में तो 'आम' शब्द चलता रहा पर 'कच्चे' अर्थ रखने वाले संस्कृत शब्द 'आम' का लोप हो गया।

च. पर्याय

कभी-कभी यह देखा जाता है कि जन-मस्तिष्क व्यर्थ में एक भावना के लिए कई शब्दों को अपने मस्तिष्क पर लादना नहीं पसन्द करता, अतः कुछ शब्दों का लोप हो जाता है।

पर्याय में एक या कई शब्दों के लोप में तो मनुष्यों की भाँति लड़ाई भी होती है। दो शब्द जब प्रचलन में आते हैं और किसी प्रकार ऐसी दशा आ जाती है कि एक ही प्रचलित रहेगा तो शब्द अपने

अस्तित्व को कायम रखने के लिए आपस में युद्ध करते हैं। अन्त में एक हारकर मैदान छोड़ देता है और जो विजयी होता है प्रचलन में रहता है।

मुसलमान जब भारत में आये तो उनके साथ अरबी-फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द थे। यहाँ प्रचलित उनके पर्यायों से उनसे युद्ध हुआ और कभी एक पक्ष की हार हुई तो कभी दूसरे की। इस सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

मुसलमान जब यहाँ आये तो १००० की संख्या के लिए '*सहस्र*' या '*सहस*' शब्द यहाँ था। उनके साथ फ़ारसी का '*हज़ार*' शब्द आया था। स्वभावतः दोनों शब्दों में अपने अस्तित्व के लिए युद्ध आरम्भ हुआ। युद्ध काफ़ी दिनों तक चलता रहा, पर अन्त में '*हज़ार*' शब्द की विजय हुई और '*सहस्र*' को मरना पड़ा। प्रचलित भाषा तथा कुछ विशेष भाग छोड़कर साहित्य में भी 'हज़ार' का एक-छत्र राज्य है। '*सहस*' या '*सहस्र*' को कोई पूछने वाला नहीं है। हाँ, इस युद्ध में एक बात और हुई है। लड़ाई में '*हज़ार*' बेचारे की एक अँगुली टूट गई है। जन-भाषा में उसे अपना बिन्दु खोकर '*हजार*' बनना पड़ा है। खैर, मरने से तो अपनी अँगुली गँवाकर जीते रहना अच्छा ही है।

इसी प्रकार एक विजयी शब्द '*क़फ़न*' है। यह शब्द अरबी का है। संस्कृत में कफ़न के लिए '*शवाच्छादन*' शब्द आता है। निश्चित है कि आज '*शवाच्छादन*' को न तो बोल-चाल में हम प्रयुक्त करते हैं और न साहित्य में। इसका आशय यह है कि इन दोनों शब्दों में युद्ध हुआ तो '*शवाच्छादन*' को या उसके उस रूप को जो उस समय प्रचलन में था, करारी हार ही नहीं खानी पड़ी अपितु मर भी जाना पड़ा। इसी कारण आज '*क़फ़न*' सम्राट् बना बैठा है।

तुर्की शब्द '*कैंची*' और संस्कृत '*कर्तरी*' या प्राकृत '*कत्तरी*' में भी इसी प्रकार युद्ध हुआ और '*कर्तरी*' या '*कत्तरी*' को जान से हाथ धोना

पड़ा। आज '*कैंची*' के आगे कोई उसकी सुधि भी नहीं लेता, प्रयोग करना तो दूर है। '*कत्त*' की भी प्रायः यही दशा '*कमरे*' ने की है।

ये बातें तो कुछ पुरानी हैं। इधर हाल में भी हमारे कुछ शब्दों की हत्या हुई है, जिसका अपराध यूरोप से आने वाले शब्दों के सर है। '*गवाक्ष*' या '*गोखा*' का ख़ून पुर्तगाली शब्द '*जँगला*' ने कर डाला है। और स्थानों पर हो या न हो भोजपुरी में तो अब '*जँगला*' का एकछत्र राज्य है। '*न्यायाधीश*' का ख़ून '*काज़ी*' शब्द ने किया था, पर इधर हमारे '*काज़ी*' शब्द का ख़ून अंग्रेज़ी शब्द '*जज*' ने कर डाला। '*पाठशाला*' और '*मक्तब*' आज भी है, पर '*स्कूल*' के आगे उन्हें मरा ही समझिए। उन्हें अपना सामान्य अर्थ छोड़ देना पड़ा है। '*कापी*' को आज हम-आप '*अभ्यास पुस्तिका*' कहकर हटाने की या मारने की कोशिश में हैं। हो सकता है वह मर भी जाय, क्योंकि वह स्वयं किसी पुराने शब्द को हटाकर या मारकर आया है।

इस प्रकार सभी भाषाओं में एक पर्याय दूसरे का गला घोंटता दिखाई पड़ता है।

यहाँ तक हम लोग शब्दों के मरने के कारणों या परिस्थितियों पर विचार करते रहे। अब कुछ उदाहरण लीजिए।

कबीर, जायसी, सूर तथा तुलसी की भाषा को आज यदि खँगाला जाय तो बहुत-से ऐसे शब्द प्रकाश में आ सकते हैं, जो उस समय साहित्य में प्रचलित थे, पर हम आज जिन्हें बिलकुल भूल गए हैं। इनमें से बहुत तो ऐसे भी मिल सकते हैं जिन्हें प्रयोग द्वारा पुनर्जीवन प्रदान किया जाय तो हमारी भाषा की अभिव्यंजना बढ़ सकती है।

ऐसा एक शब्द '*अँकोर*' है। इसका अर्थ भेंट या अंक आदि होता है। सूर इसका प्रयोग करते हैं—

> खेलत रहौं कतहुँ मैं बाहर चितै रहति सब ओर।
> बोल लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।

कहना न होगा कि 'अंक भरना' 'अँकोर भरने' की कोमलता को

नहीं पहुँच सकता। 'अँकोर' के भेंट या नज़र के अर्थ में तुलसी तथा जायसी में भी बड़े सुन्दर प्रयोग मिलते हैं।

जायसी में एक इसी प्रकार का शब्द '*परविला*' मिलता है। '*परविला*' का अर्थ 'पहले जन्म का' होता है।

जस ऊखा कहँ अनिरुध मिला।
मेटि न जाइ लिखा *परविला*।

आज यह शब्द भी मर गया है।

तुलसी का भी एक शब्द '*गुदारा*' उदाहरणार्थ लिया जा सकता है—

भा भिनुसार *गुदारा* लागा।

'*गुदारा*' का अर्थ नाव पर नदी पार करने की क्रिया होता है। यह शब्द भी अब जीवित नहीं है।

इस प्रकार के और भी बहुत से शब्द मिल सकते हैं, पर यहाँ उन्हें देकर अध्याय को बढ़ाना व्यर्थ होगा।

डॉ० अमरनाथ झा ने 'हिन्दुस्तानी' में एक 'हिन्दी के कुछ भूले हुए शब्द' शीर्षक लेख लिखा था। यह लेख उनके निबन्ध-संग्रह 'विचार-धारा' में भी है। इस लेख में उन्होंने डेढ़ सौ से ऊपर शब्दों की एक सूची दी है, जिनकी मृत्यु इधर दो सौ वर्षों के भीतर हुई है। यह सूची उन्होंने जॉन शेक्सपीयर की 'हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी' के आधार पर तैयार की है। अंग्रेज़ों की डिक्शनरियों में प्रायः उस काल के प्रचलित शब्दों को ही विशेष स्थान दिया जाता था, क्योंकि वे मिशनरी तथा अफ़सर लोगों को हिन्दुस्तानी बोलने और हिन्दुस्तानी लोगों की बात समझने की योग्यता प्रदान करने के लिए बनाई जाती थीं। शेक्सपीयर, फालन, हेरिस तथा टेलर आदि के प्रसिद्ध कोषों के आधार पर इस प्रकार काल में लुप्त हुए या मरे शब्दों की सूची कई हज़ार की बनाई जा सकती है। डॉ० झा की सूची में दिये गए कुछ हाल के मरे शब्दों के शव यहाँ देखे जा सकते हैं—

शब्द	अर्थ
१. उभराना	बरतन को ऊपर तक भर देना
२. अपटक	जो हाथ-पैर चलाने में असमर्थ हो।
३. उजान	नदी के प्रवाह के विरुद्ध
४. अर्गनो[1]	कपड़ा सुखाने की रस्सी।
५. असौं[2]	इस वर्ष
६. इंडुआ	कपड़े का टुकड़ा, जिस पर गट्ठर रखा जाय।
७. भँभूआ	वह फ़क़ीर, जो चोरी करने पर बाध्य होता है।
८. पसर	मवेशी को रात को चराना
९. पोआना	धूप में सुखाना
१०. फसकड़	ज़मीन पर पाँव फैलाकर बैठना।
११. ततरी	चपला कुमारी
१२. थाँग	चोरों का अड्डा
१३. त्योंधा	जिसे कुछ कम दिखाई देता।
१४. चफाल	ऐसा स्थान जिसके चारों ओर दलदल हो।
१५. दसौंधी	प्रशंसात्मक कविता लिखने वाला।
१६. डावक	कुएँ का ताज़ा पानी।
१७. खब्बा	बाएँ हाथ से काम करने वाला।

---

१. २. ये शब्द भोजपुरी में अब भी प्रयुक्त होते हैं।

ये सब अभी हाल में मरे हैं। यदि ध्यान दें तो स्पष्ट हुए बिना न रहेगा कि उपर्युक्त शब्दों के लिए हमारी हिन्दी में कोई एक शब्द नहीं है।

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में ऊपर के किसी भी कारण ने काम नहीं किया है। साहित्य में इनकी अनुपस्थिति का शायद प्रधान कारण यह है कि इधर नवीन जागरण के बाद हमने जब अपने साहित्य का निर्माण प्रारम्भ किया तो ग्रामीण शब्दों को तो पूर्णतः छोड़ दिया। ऐसी दशा में हमारे लिए दो ही स्रोत थे। एक तो हमने सभ्य लोगों में प्रचलित खड़ी बोली की शब्दावली ग्रहण की और उससे भी जहाँ काम नहीं चला संस्कृत के शब्द ग्रहण किये। प्राचीन हिन्दी-कवियों के शब्दों का कोई संग्रह हमारे समक्ष न था, अतः उसका सहारा न ले सके। आज हमारी शब्दों की समस्या काफी सुलझ जाय यदि भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य तथा ग्रामीण बोलियों के समर्थ शब्दों को संग्रहीत करके हम प्रयोग करने लगें। अस्तु।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द मरते हैं। कुछ शब्द जिनकी हमें आवश्यकता नहीं है, उनका मरना तो ठीक ही है, पर कभी-कभी ऐसे शब्द भी मर जाते हैं जिनकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है और जिनके न होने के कारण हम अपनी बातों को घुमा-फिराकर कहते हैं या एक शब्द के स्थान पर एक या दो पंक्ति में भाव व्यक्त करना पड़ता है। ऐसे मरे शब्दों को हमें पुनः ले लेना चाहिए। कहना अनुचित न होगा कि मरे शब्दों का अध्ययन मनोरंजक तथा ज्ञानवर्धक एवं समाज की विभिन्न बातों का प्रकाशक होने के साथ भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से भी बड़ा श्रेयस्कर है।